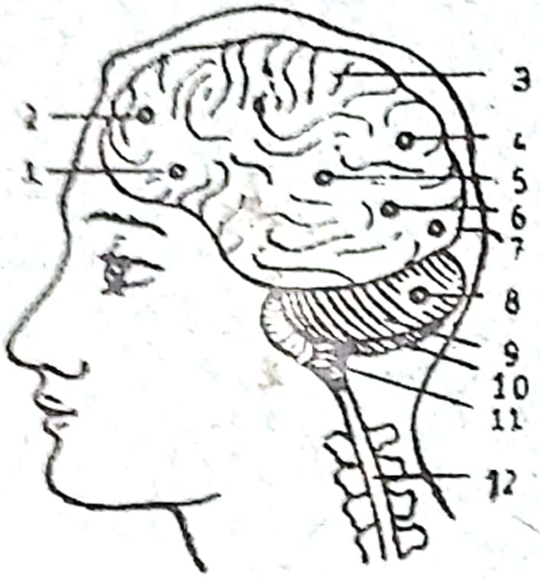
भूत-प्रेत है ?

पतंजलिके योगदर्शन पर आधारित भूत-प्रेत जादुटोनाका
मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

वैदिक सिध्धांतो पर आधारित

भूत प्रेत के बारेमें अंध विश्वास और वहमका समाधान





भोजक पब्लीकेशन, नवावाडज, अहमदाबाद-३८००१३. (गुजरात)

BHOJAK

PRICE RS. 12-00

॥ ओ३म् ॥

वैदिक सिध्धांतो पर आधारित

अंगमेजयत्व

भूत–प्रेत, जादु टोना का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

: लेखक :

कमला प्रसाद चतुर्वेदी

: प्रकाशक :

प्रकाशवीर आर. भोजक

: पुस्तक प्राप्ती स्थल :

प्रकाशवीर आर. भोजक

15-A, करुणा सोसायटी, नया वाडज,

पोष्ट आफिसके पास, अहमदाबाद – 380013 (गुजरात)

भूमिका

प्रेतात्मा की गुत्थी अत्यंत उलझी हुई है। विश्व के सभी कोनों में इसका आंतक छाया हुआ है।

अंगमेजयत्व ही उसका एक मात्र समाधान है। हमारा मन जब भ्रमित या कीसी भी प्रकार के प्रभावसे व्यग्र, व्यथित या उन्मादित हो उठता है तब वह तथा कथीत प्रेताकार हो उठता है और जैसे ही वह ऐसे प्रभावों से मुक्त होता है उसका भूत प्रेत जादुटोना आदी सभी समाप्त हो जाता है।

भूतप्रेत के अस्थित्व को बहुत कुछ प्रयत्न कर ने पर भी सिध्ध नहिं कीया जा सका।

पाठक वृंद पुस्तक पढने के बाद स्वयं कीसी निर्णय पर पहोंच सकेंगे यह पुस्तक कोई विशेष ज्ञान नही देती है परंतु दिशा बोध अवश्य करा शकेगी। और विद्धजन अवश्य इसी विषय के धरातल तक पहौचेंगे।

☐ आभार ☐

इस पुस्तक की रचना में मेरा विद्वान मित्र मुनसी राम शर्मा (प्रिन्सीपाल ITI बडोदा) तथा श्री मगनमल शर्मा (RTD B.I.O W. Rly wankaner)का बहुत ही मुल्यवान योगदान रहा।

श्री प्रकाश चंद शर्मा पुरोहीत आर्यसमाज रायपुर अहमदाबाद का बहुत बडा सहयोग रहा, विषय पर विचार बीमर्स लेखन व संशोधनमें उनके सहयोग के बीना अंगमेजयत्व जेसा कार्य मुज जैसे साधारण व्यक्ति के लीए तो सम्भव था ही नहीं।

ईन सभी सहयोगीयों को हार्दीक धन्यवाद

– कमला प्रसाद

प्रकाशक का निवेदन

जीस पुस्तक को प्रकाशीत करने के लीए हम बहुत समय से संकल्प करते थे आज वो पूरा होते हुए देखकर हमें बहुत हर्ष हो रहा है ।

भूत-प्रेत, जादु, टोना जैसी अंधश्रद्धा गाँवो, देहातों, शहरोंमें और कुछ पढे लीखे लोगों में भी देखी जाती है । एसी बातो को मानकर मनुष्य अपनी समय, शक्ति, धन को नष्ट करता है, कभी कभी उनकी जान भी चली जाती है ।

कीसी बात या सिद्धात को मानने के लीये या अपनाने के लीए कोई वैज्ञानिक आधार चाहिए क्योंकी परमात्मा विज्ञान स्वरूप है । ईसलीए उनकी सब कृतियां विज्ञामय ही हो शकती है ।

पुराण कुरान, बाईबल, महाभारत, रामायण ये सब मनुष्यकृत ग्रंथ है । परंतु वेद ईश्वरकृत ग्रंथ है । सृष्टि की आदीमें जीवों के कल्याण के लीए ईश्वरने वेदोंका प्रकाश ऋषिओं के हृदय आकाश में कीया । ऋग्वेद के प्रथम मंत्रमें कहा गया है की -

मंत्र - अग्निमिळे पुरोहितं यज्ञस्य देव मृत्विजम ।
हो तारं रत्नधातमम ।। ऋग्वेद ।।

भावार्थ : पिता के समान कृपाकारक परमेश्वर सब जीवों के हीत और सब विद्याओं की प्राप्ति के लीये कल्प कल्प की आदी में वेदका उपदेश करता है ।

वेदो में कीसी भी व्यक्तिगत बातें या घटनाओंका ईतिहास नही है । परंतु वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है । वेदों के आधार पर दुसरे ऋषिमुनियोंने उपनिषद और दर्शन शास्त्र की रचना की । ईन्ही दर्शनशास्त्र में से महर्षि पतंजलि के योग दर्शन के आधार पर ईस पुस्तक की विषय वस्तुकों समजाया गया है ।

विश्वास है की वैदीक सिद्धांतो के आधार पर बनी पुस्तक "अंग में जयत्व" आपको समस्याओं का समाधान करने में मददरूप वा सहयोगी बन शकेगी ।

- प्रकाशवीर आर. भोजक

विषय - सूची

भूतप्रेत जादूटोना

विश्व में भूतप्रेत जादूटोना आदि का बडा प्रचार है । विविध प्रकार के रोग, शारीरिक तथा मानसिक कष्टों का कारण भूतप्रेत जादूटोना इत्यादि माना जाता है । मन्दिर,मस्जिद तथा गिरजाघरों आदि धार्मिक स्थानों पर जाकर नर–नारी को हाथ–पैर एठते पढकते अथवा तडफकाते देखा जाता है । रोगियों को, जादूटोना अथवा धार्मिक कर्मकांडो द्वारा चमत्कारिक रूप से स्वस्थ करने का दावा धार्मिक गुरुओ द्वारा किया जाता रहा है । जिसमें कुछ लोंगो का विश्वास है कुछ लोगोंका नही. पुराणोंमें, होली बाइबल में तथा कुरान–ए–शरीफ इत्यादि अनेकों धार्मिक ग्रंथों में इस तरह चमत्कारिक उपचारका वर्णन मिलता है । इस विषय में योगविद्या के आदि द्रष्टा महर्षि पातंजलि महाराज अपने योगशास्त्र के समाधिपाद के ३१ वे सूत्र में लिखते हैं कि अंगमेजयत्व नाम का एक ऐसा विघ्न है जो शरीर को कम्पायमान कर देता है । दुःख दौर्मस्यांगमेजयत्वश्वास प्रश्वासा । विक्षेपसह भुवः ।। योग दर्शन, समाधिपाद–३१ ।।

भावार्थ :– दुःख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व, श्वास, प्रश्वास, चित्तको बिगाडने वाले पाँच विघ्न हैं। अंग मे जयत्व नामक विघ्न शरीर के अंगों को कंपाता है

आओ ! भूतप्रेत – जादूटोना आदि की अत्यंत उलझी हुई विवादास्पद समस्याओंका निष्पक्ष एवं वैज्ञानिक अथवा मनोवैज्ञानिक रूपसे विश्लेषण करें।

सृष्टि में जो भी कुछ कार्य होता है या जो कुछ भी घटनायें घटती हैं वह सभी सृष्टि के पदार्थों में, पदार्थों द्वारा, पदार्थों के लिये ही होती हैं।

सृष्टि में कुल मिलाकर केवल सात पदार्थ होते है । इनके अतिरिक्त कोई पदार्थ नहीं होता । यह एक सार्वमौनिक व निर्विवाद सत्य है, इन सातो पदार्थों में से दो पदार्थ चेतन हैं और शेष पाँचों पदार्थ जड हैं। इन सातों पदार्थ अनादि अनन्त हैं। इन सातों पदार्थ के अपने–२ गुण धर्म हैं जो निम्नप्रकार हे।

पदार्थ	गुण
(१) **ईश्वर**	मात्र एक है, जो सत् चित्, आनन्द स्वरूप, निराकार, सर्व शक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार,

अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर,अमर, अभय,नित्य, पवित्र,सृष्टिकर्ता और उपास्य है।

(२) **जीव** अनेक, अगणित, चेतन, सत निराकार, अनन्त, अनादि, अजर, अमर, नित्य, और उपासक है।.

(३) **आकाश** विराट, अजन्मा, अनन्त, अनादि अजर, अमर और साधन है।

(४) **जल** जड, अनन्त, अनादि, अजर, अमर और साधन है।

(५) **वायु** जड, अनन्त, अनादि, अजर, अमर और साधन है।

(६) **अग्नि** जड, अनन्त, अनादि, अजर, अमर और साधन है।

(७) **पृथ्वि** जड, अनन्त, अनादि, अजर, अमर और साधन है।

सात पदार्थोवाली यह सृष्टि कभी साकार तो कभी निराकार अवस्था में जाती रहती है। प्रलयकाल में यह निराकार एवं सुक्ष्म अवस्था में रहती और सृष्टि कालमें यह साकार व स्थूल अवस्था में रहती है। इस सृष्टि के रूप परिवर्तन का यह क्रम अनादि एवं अनन्त है।

सृष्टि सर्वदा और सर्वथा चैतन्य पदार्थ अर्थात् जीवात्मा के भोग उपयोग व उपयोग के लिये होती है। इस समुच्चय क्रिया कलाप में एक नियम बद्धता होती है। इन शाश्वत नियमोंका नियन्ता ईश्वर है। सृष्टि भोग्य है, जीव भोगी है और ईश्वर विधाता है।

सृष्टि में जीव ही ऐसा चैतन्य पदार्थ है जो कर्म करता है और उस कर्म के अनुसार फल भोगता हे। इसी कर्म विधान से जीव सुख व दुःख का अनुभव करता है।

जीव को जीवन धारण करने की ईच्छावृत्ति तब तक बनी रहती है जब तक कि वह अपने कर्मों द्वारा अर्जित अपने प्रारब्ध को सम्पूर्णतः भोगकर संतुष्ट नहीं हो जाता।

शुभ कार्य करके शुभ लाभ लेकर जीव जब सम्पूणं संतुष्ट हो जाता हे तब उसकी जीवन धारण करने की वृत्ति समाप्त हो जाती है ऐसी दशा में वह आनन्द मुद्रा में स्वछंद हो ब्रह्मांड में विचरने लगता है इस विधान में संतोष, वृत्ति और स्वछंदता एक दूसरे से नियम बद्ध हैं। इस नियम का नियन्ता इश्वर है।

– जीव की अवस्थायें –

जीव जब जीवन धारण किये नहीं होता है तब वह मुक्त होता है और

जब वह जीवन धारण किये होता है तब वह बंधनयुक्त होता हे। बंधन युक्त दशा में उसकी चार अवस्थाओं में से किसी न किसी एक अवस्था में रहता है। वे चार अवस्था निम्न प्रकार हैं :

(१) जागृत अवस्था, (२) सुषुप्त अवस्था (३) स्वप्नावस्था, और (४) समाधिस्थावस्था इसके अतिरिक्त जीव की जीवन कालमें अन्य कोई अवस्था नही।

मुक्तात्माये चिर आनन्द में लीन रहती है यही आत्मा का आनन्दमय कोष है। यह आनन्द कोषीय मुक्तिकाल बहुत लम्बा होता है। इस मुक्तिकाल में सृष्टि कई बार बनती व बिगडती है। महर्षि दयानन्दजी ने सृष्टि काल को ४३२०००००० वर्ष बताया है और इतना ही प्रलयकाल बताया है। जिस तरह दिन व रात मिलकर २४ घन्टे होते हैं उसी तरह से एक सृष्टिकाल और एक प्रलयकाल (एक ब्रह्मदिन व एक ब्रहरात्रि) मिलकर, ८६४००००००० वर्ष का होता है। जब कि एक मुक्तिकाल ३११०४० ०००००० ००० वर्ष का होता है। यानि यह सृष्टि जीव के मुक्तिकाल में ३६० बार बनती व बिगडती है। या नि ३६० ब्रह्मदिन अथवा एक ब्रह्मवर्ष का मुक्तिकाल हुआ।

जीवन बंधन युकत मनुष्यों को सृष्टि काल और मुक्तिकाल बहुत लम्बा लगता है परन्तु मुक्तात्माओं को इसका अनुभव नही होता कयोंकि वे परम आनन्द में लीन होती है। गहरी निद्रा में भी प्राणी को समय प्रसार का ज्ञान नही होता। जागृत अवस्थामें भी जब कोई मनुष्य अपनी किसी समस्या पर अत्यन्त एकाग्रमन या विचारमग्न होता है तो उसे समय का भान नही रहता। कवि लोग जब विचारमग्न होते है तो प्रातः से शाम हो जाती है उन्हे पता नही चलता। जब मनुष्य की विचार श्रृंखला जागृत होती है तो उसे समय का ज्ञान नही होता है। अचानक श्रृंखला टूटती है तो उसे समय का भान होता है या किसी कारणवश जब समय की ओर ध्यानाकर्षण होता है तब विचार श्रृंखला टूट जाती है

परमात्मा व जीवात्मा के अतिरिक्त सृष्टि में कोई तीसरे प्रकार का चेतन पदार्थ नही होता। परमात्मा तो सर्वव्यापी सर्वज्ञाता एवं सर्वशक्तिमान है। जीवात्मा ही ऐसा है जो जीवन, मुक्ति, कर्म, दुःख, सुख आदि से सम्बन्धित है। उस जीवात्मा की कुल पाँच अवस्थायें होती हैं (१) जागृत (२) स्वप्नावस्था (३) सुषुप्तावस्था (४) समाधिस्थावस्था और (५) मुक्तावस्था। इन पाँच अवस्थाओं के अतिरिक्त जीव की अन्य कोई अवस्था नही होती ।

अब प्रश्न होता है कि भूतप्रेत, चुडैल आदि है क्यां ? यदि ये जीव हैं

तो यह जीव की कौन सी अवस्था है ?

इस अवसर पर यह भी विचार लेना उचित होगा कि विश्व में कई लोग ऐसी वस्तु के अस्तित्व होने में विश्वास रखते हैं जिसका वास्तव में कोई स्थित्व ही नहीं होता। जैसे कि स्वर्ग, नर्क, अमृत परी, देवलोक, वैकुण्ठ, नागमणि इत्यादि।

– स्वर्ग–नर्क –

स्वर्ग व नर्क जीवात्मा के सुखी व दुःखी दशा का नाम है जो जहाँ है वहाँ यदि सुखी है तो वह उसके लिये स्वर्ग है यदि दुःखी है तो वह उसके लिये नर्क है। एक ही स्थान किसीके लिये स्वर्ग सिद्ध होता है तो किसीके लिये नर्क। इसके अतिरिक्त कहीं स्वर्गलोक है और ना ही नर्कलोग। हर भोग्य पदार्थ जो जिस प्राणि के लिये स्वास्थ्यप्रद है यह वह उसके लिये अमृत है और यदि हानिकारक है तो विष है। एक ही पदार्थ अमृत और विष सिध्ध होता है। परियों की भी मात्र एक कल्पना ही है वास्तव में वे नही हैं। हाँ किसी पक्षीको परिन्दा या परी कहा जाय तो वह एक और बात है।

– स्थित्व –

अब इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि भूत, प्रेत, दैत्य, चुडैल आदि का वास्तविक स्थित्व है या वह सब स्वर्ग–नर्क के जैसी कल्पना मात्र ही है।

कोई चीज यदि होती है तो होती ही है नही होती तो नहीं ही होती। स्थित्व में होनेवाली वस्तु को सिध्ध किया जा सकता है परन्तु जिस वस्तु का स्थित्व ही नही होता वह कभी भी सिध्ध नही होता क्योंकि एक शाश्वत नियम है कि भाव का कभी अभाव नही हो सकता और अभाव का कभी भाव नही हो सकता।

भूतप्रेत, देवी अथवा दानविक शक्ति जो भी कुछ हो अथवा न हो परन्तु लोगों में उसके प्रति विश्वास अवश्य है विश्वास ही नहीं अपितु श्रध्धा भी है और भय भी। प्रायः भूतप्रेत को किसी स्थान विशेष में माना जाता है। जैसे स्मशान, दरगाह, धार्मिक स्थान, कुआँ, तालाब, पेड, आदि में उन दैवी अथवा आसुरी शक्तिओं का होना माना जाता है। ऐसे स्थानों पर नर–नारियाँ जाकर अपने शरीर को झझकोरते, तोडते, मरोडते, छटपटाते, लोटतेपोटते देखे जाते हैं।

किन्तु मात्र इन बातों से ही भूतप्रेत का न तो होना सिध्ध होता है नही ना होना। अतः इनके स्थित्व का परीक्षण तथा इस प्रकार के विश्वास का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आवश्यक है।

– परीक्षा –

वैदिक संस्कृति में सत्यासत्य के निर्णय के लिये कुछ शाश्वत, सार्वभौमिक एवं अकाटय सिध्धान्त है। भगवान दयानंदजी ने न्यायदर्शन तथा वैशेषिक दर्शन के आधार पर सत्यासत्य के निर्णय के लिये पाँच परीक्षायें निर्देश की हैं। जो निम्न प्रकार हैं।

(१) वेदोक्त होना अर्थात् ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल हो।

(२) सृष्टिक्रम के अनुकूल होना या विज्ञान समर्थित होना।

(३) आप्त वचनानुकूल होना।

(४) जीवात्मा अंतरात्मानुकूल होना।

(५) प्रमाणित होना अर्थात् (१) प्रत्यक्ष (२) अनुमान (३) उपमान (४)शब्द (५) एतिह्य (६) अर्थापति या (७) अभाव द्वारा समर्थित होना।

उपरकी पाँचों परीक्षाओं से उत्तीर्ण सभी तथ्य सत्य होतें है।

चूं कि भूतप्रेत, चुडैल आदि का स्थित्व विवादास्पद है उसका परीक्षण आवश्यक है। आओ ! भूतप्रत की उपर बताये सिध्धान्त के अनुकूल परीक्षणा करें।

प्रथम परीक्षा वेदोक्त का होना

वेदोक्त के होने का अर्थ कि हर वस्तु ईश्वर के गुण, कर्म, स्वपभाव के अनुसार होनी चाहिये। ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव निम्न प्रकार हैं।

गुण : चैतन्यता, आनन्द, शक्ति, ऐश्वर्य व्यापकता, पवित्रता, निराकार, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, सर्वाधार, अजर, अमर, अभय और नित्य।

कर्म : सृष्टिरचना, सृष्टिधारण और प्रलय ।

स्वभाव : ज्ञान, सत्य, न्याय, दया और प्रेम।

अब उक्त गुणों की दृष्टि से भूतप्रेत इत्यादि को यदि चेतन पदार्थ माना जाय तो उसमें विचार–शक्ति, चेष्टा, तथा प्रयत्न ये तीन गुण मिलने चाहिये। यदि भूतप्रेत में विचार शक्ति है तब उसके कार्य भी विचारपूर्वक होने चाहिये तथा उसे एक वैचारिक ढंग से बातचीत करना चाहिये। इसके साथ साथ उसकी कोई चेष्टा अथवा इच्छा भी होनी चाहिये और फिर उन इच्छाओं को पूर्ण करने के लिये उसे प्रयत्न करने चाहिये। भूतप्रेत जिस स्वरूप में आज जाने जातें है वह यह है कि वे किसी भी पुरुष व स्त्री के अंदर प्रविष्ट हो जाते हैं और फिर उस व्यक्ति को त्रस्त करते हैं। अब हम यह मान लें कि भूतप्रेत, चुडैल इत्यादि में से किसी को किसी एक व्यक्ति से दुश्मनी है या किसी कारणवश वह उस व्यकित से

नाराज हो गया है उसी के लिये वह उस व्यक्ति को पकडता है और परेशान करता है जैसा कि प्रत्यक्ष मानव व्यवहारों में भी होता है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से किसी कारणवश झगडा या मारा–मारी इत्यादि करता है।

कहते हैं और मानते हैं कि भूतप्रेत, चुडैल आदि जहाँ रहते हैं वहाँ यदि कोई चला जाय अथवा वहाँ कुछ गंदगी यानि पेशाब आदि करते हैं तो वे (भूतप्रेत) नाराज होकर उस व्यक्ति को परेशान करते हैं।

यहाँ अब विचार करना है कि यदि वे ऐसा कर सकते हैं तो चेतन्य ही मानना पडेगा और चेतन्य पदार्थों में केवल दो ही प्रकार होते हैं एक सर्वज्ञ जो परमात्मा है दूसरा अल्पज्ञ जो जीवात्मायें है। अतः भूतप्रेत यदि हैं तो जीव की ही कोटी में आ सकते हैं। और जीव की कोटि में यदि है तो उसकी पाँच अवस्थाओं (जागृत, स्वप्न, सुषुप्ता, समाधिस्थ और मोक्ष) में से कोई न कोई एक अवस्था होनी चाहिये। स्वप्नावस्था तथा सुषुप्तिअवस्था का तो यहाँ प्रश्न ही नही उठता क्योंकि ये अवस्थायें तो शारीरिक हैं एवं अकर्मण्यावस्था है जब कि यहाँ प्रश्न ही उनके कर्मों के कारण उठता है।

समस्या की सबसे बडी उलझन यही है कि यही भूत–प्रेत शरीर धारी है तो दिखलाई पडने चाहिये और अशरीरी है तो क्यो है ? और क्या वे कर्म कर सकते हैं ? और क्या वे कर्म करने में स्वतंत्र हैं ? इसके अतिरिक्त एक प्रश्न यह भी उठता है कि भूतप्रेत यदि जीव है तो यह उनकी भोग योनी है या कर्म योनी ? यदि भूतप्रेत इत्यादि भोग योनि है तो उनकी कर्म स्वतंत्रता का प्रश्न समाप्त हो जाता है और यदि प्रेतयोनि मनुष्यवत् भोगयोनि तथा कर्मयोनि दोनों हैं तब प्रश्न उठता है कि प्रेतयोनि में और मनुष्ययोनि में विभिन्नता किस बातकी है ? और वे क्या है ?

यदि भूतप्रेत चुडैल आदि को जीव माना जाय तथा उनकी एक विशेष योनि भी मान ली जाय तो योनियाँ केवल चार प्रकार की मानी गई हैं पिन्डज, अन्डज स्थावर एवं उद्‌भिज। अब यदि इसके अतिरिक्त प्रेतयोनि एक पाँचवी योनि (जिसका न तो कोई प्रमाण मिलता है न तो कारण) मान ली जाय तो फिर ऐसे प्रेत योनीष्ट जीव के जीवन के प्रकार, पध्धति, प्रयोजन एवं काल इत्यादि पर भी विचार करना पडेगा।

इन समस्याओं पर विचार करते समय सर्वप्रथम प्रश्न उठता है कि यदि जीव प्रेतयोनि धारण किये हैं तो उसके जीवन यापन के लिये उसके पास इन्द्रियोंका होना आवश्यक है और ज्ञानेन्द्रियाँ तो सुक्ष्म रूप में मानी भी जा सकती हैं परन्तु

कर्मेन्द्रियों के लिये अन्नमय कोष आवश्यक है और विना कर्मेन्द्रियों के कोई जीव कर्म कर नही सकता। यदि प्रेत–योनिष्ट जीव के पास कर्मेन्द्रियाँ हैं तो फिर उसका साकार स्थूल शरीर में होना आवश्यक है।

यदि प्रेतयोनि निराकार है तो फिर जीव मात्र सूक्ष्म शरीरो के माध्यम से कौन कौन सा कार्य कर सकता है इस समस्या पर विचार करना आवश्यक है।

यहाँ से यह मानकर ही आगे विचार किया जा सकेगा कि भूतप्रेत इत्यादि चाहे जो हों वे साकार नहीं उनके पास स्थूल शरीर नही होता।

अब यदि कोई निराकार प्रेत–योनि है और जीव उस योनि में है तो कर्मेन्द्रियाँ तथा कर्म का प्रश्न ही नही उठता। विचार यह करना है कि जीव सुक्ष्म शरीर में मात्र मनोबल के आधार पर कुछ कर सकता है या नही?

मृत्यृ के बाद जीव केवल स्थूल शरीर को छोड देता है और सूक्ष्म शरीर उसके साथ रहता है यह बात तो सत्य है परन्तु ऐसी दशामें जीव स्वस्थ चित् कार्यक्षम रहता है या नही यह भी विचारनीय समस्या है।

यह भी एक निर्विवाद सत्य है कि मृत्यृ के बाद जीव या तो पुनर्जन्म लेता है या मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। जो जीव मोक्ष को प्राप्त हो जाता है उसका किसी मनुष्य के अन्दर प्रवेशकर के उसे प्रताडन देना इत्यादि मानना अस्वाभाविक होगा, क्योंकि मोक्ष प्राप्त आत्मायें पवित्र एवं आनन्दमग्न होती हैं कर्म के समस्त बंधन सर्वथा टूट जाने के पश्चात् ही उन्हें आनन्दमय मोक्ष प्राप्त हुआ होता है अतः मोक्षात्मा के कर्म का प्रश्न नही उठता। और यदि मृत्यृ के बाद जिन्हें मोक्ष नही प्राप्त होता उन आत्माओं पर विचार करें तो यदि वे स्थूल शरीर छोडने के बाद (मृत्यृ के बाद)केवल सूक्ष्म शरीरों में भी यदि स्वस्थ मन एवं कार्यक्षम रहती है फिर वे अपनी ही इच्छानुसार पुनर्जन्म के लिये किसी गर्भ में प्रवेशकर सकते है। यदि इस बात को स्वीकार कर लिया जाय तो फिर कर्म एवं प्रारब्ध तथा कर्मानुकूल पुनर्जन्म का सिद्धांत ही समाप्त हो जाता है।

अब थोडे समय के लिये यह मान लिया जाय कि जीव निराकार प्रेत योनि में मात्र ज्ञानेन्द्रियों के साथ स्वस्थमन रहता है और वह इतना सक्षम होता है कि परकाया में प्रवेशकर सकता है परन्तु गर्भ मे नही (यद्यपि गर्भ भी परकाया ही है) तो प्रश्न उठता है कि ऐसी दशा और यह प्रेत योनि किस प्रयोजन के लिये मिले। क्योंकि यह निर्विवाद सिद्धांत है कि विना कारण कोई भी कार्य नही होता। तो फिर किसी जीव को प्रेत योनी प्राप्त करने का क्या कारण और प्रयोजन हो सकता है।

यहाँ एक बात और हम मान ले कि कोई मनुष्य जब अकस्मात अथवा आत्महत्या इत्यादि के कारण मृत्यृ पाता है तब वह अपने शेष जीवन (जो कि वह अकस्मादादि के कारण न होने पर जीवन जीता) तक प्रेत योनि में रहता है। ऐसी दशा में स्वभावतः सिध्ध होता है कि जीव, आकस्मिक मृत्यृ के समय उसके जीवन के शेष कर्म व भोग को शेष काल तक के लिये ही प्रेतयोनि को प्राप्त होता है और बाद में प्रेतयोनि से मुक्त हो कर सांधारण योनि को प्रारब्ध के अनुकूल प्राप्त होता है।

यहाँ एक समस्या उठ खडी होती है कि यदि अकालमृत्यृ प्राप्त जीव अपने जीवन के शेष दिनो तक प्रेतयोनि में रहता है तो यह सिध्धान्त निष्पक्षता के साथ सभी पर लागू होने चाहिये। जितने कीट, पतंग, पशु, पक्षी को हम मार कर खा जाते है या अन्य अकस्मात से मारे जाते है वे सभी प्रेतयोनि में जाने चाहिये। इस सिध्धान्त से देखा जाय तो बहुत कम परिवार मिलेंगे जिसमे कोई प्रेतयोनि को न प्राप्त हुआ हो। वास्तव में तब तो घर–घर भूत का डेरा मानना पडेगा। आँधी, तुफान, भूकम्प, नदी के बाढ आदि से जीतने मनुष्य मरते है उसका सो–गुना पशु–पक्षी, कीट–पतंग मर जाते है। विश्व में जितनी मनुष्य की आबादी है उससे कई गुना अधिक तो भूतप्रेत होने चाहिये। एक लीटर पानी को जब हम गरम करते है तो उसमें जीवन भोगनेवाले जीव (कृमि) जो अकाल मृत्यृ को प्राप्त होते है उनकी संख्या शायद अपने देश की कुल आबादी से भी अधिक होती है।

अब विचार यह करें कि भूतप्रेत चुडैल आदि चाहे जो हो वे किस तरह हमारी जानकारी में आते है।

एक औरत किसी मंदिर–देवस्थान इत्यादि को जाती है वहाँ का पुजारी या फकीर कुछ धूप–दीप करता है कुछ पाठ करता है और औरत अभुआने लगती है। बाल छुटा कर देती है हाथपाँव सर से जोर–जोर से धुनती है लोटती पोटती है इस दशा को कहा जाता है कि उसे किसी भूतने पकड लिया है पुरुष वर्ग भी ऐसा ही करते है।

किसी आदमी को बुखार आने लगा, किसी को चक्कर आने लगा, किसी के पेट में दर्द हो गया किसी की आँख में तकलीफ हो गइ वे ओझा या पीर फकीर के पास जाते है और उस पर किसी दैवी शक्ति के प्रकोप का पता लगता है। अभु आना इत्यादि प्रारंभहोता है और फिर शान्त हो जाता है। यह सब काम प्रेतयोनि को प्राप्त जीव आखिर क्यों करेंगे उन्हें तो मात्र शेष जीवन के भोग को मात्र जीवन के शेष अवधि तक ही भोगना था। और यदि वे स्वस्थ मन होते है तो क्या

इस प्रकार परकाया में प्रवेश करके उनके संतानेका काम उनका कर्तव्य हो सकता है ? जो वे स्वस्थ मन से करते है और यदि करते है तो यह ईश्वर के गुण के अनुकूल नही है। ईश्वर में किसी को अनायास दुःखी करने का गुण (अवगुण) नही है।

अतः यह निर्विवाद निःशंक मानना ही पडेगा कि भूतप्रेत आदि जिस स्वरुप में माने जाते है वह ईश्वर के गुणानुकुल नही है।

गुण सम्बन्धी निर्णय पर पहुँचने के पश्चाद अब कर्म पर विचार करें।

ईश्वर का कर्म है सृष्टि रचना, सृष्टि धारण एवं प्रलय। यह सभी ईश्वर का पवित्र कार्य सर्वथा सर्वदा वैज्ञानिक है। रचना, संचालन, एवं प्रलय में कारण भूत घटनायें नियमबद्ध स्वरूप में कर्मानुकूल होती है। न तो समूचें सृष्ट काल के ४३२०००००० वर्ष (चार अरब बत्तीस करोड वर्ष)में कोई अनियमितता पाई जाती है नाही इतने ही लम्बे प्रलय काल में।

ईश्वर प्रणीत शाश्वत नियम अविरल विज्ञानतः चलता रहता है। ईश्वर के कर्म में रचना त्मकता, संचालनात्मिकता तथा परिवर्तनियता समाया हुआ है। जब कि भूतप्रेत आदि के कर्मो में इस सभी तत्वो का अत्यन्त अभाव है न तो भूतप्रेतों की कोई रचना है ना ही उनका कोई संचालन अथवा व्यवस्था है ना ही उनमें कोई परिवर्तन या विज्ञान है।

यहाँ ऐसे विचार करिये कि व्यकित किसी ऐसी जगह जाकर वहाँ गंदगी कर देता है जहाँ किसी भूत या प्रेत अथवा पीर आदि का निवास था। और इस कारण वह भूत उसे पकड लिया यानि उसके शरीर में प्रवेश कर गया और उसे परेशान किया। इसका अर्थ यह हुआ कि वे जिस स्थान पर रहते है वहाँ गंदगी करना वर्जित है। तों प्रेतात्माओं की ओर से ऐसी कोई व्यवस्था होनी चाहियें। जिससे लोगों को पता चल जाय कि इस जगह जाना मना है या गंदगी करना मना है। परन्तु इस प्रकार की कोई संचालन व्यवस्था नही है।

मनुष्य इस प्रकार की व्यवस्था करता है। चोर–उचक्को से बचने के लिये व्यवस्था, दैविक अर्थात गर्मी–सर्दी–वर्षा से बचने की व्यवस्था पशु, पक्षी, जानवर, खटमल, मच्छर आदि से बचने की व्यवस्था सर्व साधारण एवं अन्य प्राणी को चेतावनी की व्यवस्था इत्यादि। यहाँ तक की पशु–पक्षी एवं जानवर भी अपने लिये यथोचित यथासम्भव व्यवस्था करते है। चिडिया घोसला बनाती है। कुछ जीव–जन्तु धरती के अंदर बिल खोद लेते हे इत्यादि। कहने का तात्पर्य है कि हर जीव अपनी–अपनी योनि में यथा परिस्थिति व्यवस्था करता है। परन्तु प्रेतयोनि

के जीवों में कोई व्यवस्था अथवा संचालनात्मक प्रवृत्ति प्राप्य नही। अतः वे ईश्वर के गुण एवं कर्म के अनुकूल नही पाये जातें ।

अब आओ स्वभाव पर भी विचार करें ।

ईश्वर का स्वभाव है ज्ञान, सत्य, न्याय, दया और प्रेम ।

यह बात सत्य है कि जीव अल्पज्ञ एवं अज्ञानी होता है वह कभी ज्ञान से अज्ञान की ओर तो कभी अज्ञान से ज्ञान की ओर चलता है, उसके अंदर कभी अवगुण और कभी सदगुण आते है। किन्तु जहाँ इन सभी तत्वों का अभाव हो अर्थात ज्ञान, अज्ञानका, गुण एवं अवगुण का वहाँ वस्तु के अस्तित्व का ही अभाव सिध्ध होता है। क्योंकि किसी जीव में ज्ञान व अज्ञान दोनो का अभाव असम्भव है।

प्रेतात्माओं में यदि ज्ञान है तो ज्ञानपूर्ण कार्य करने चाहियें और यदि अज्ञानता है तो अज्ञान पूर्ण कार्य करने चाहियें। प्रेतात्मायें अज्ञानी है ऐसा माना जाय तो फिर वे जो कुछ भी करते है वे मुर्खता मानना चाहियें और वे अज्ञानी अथवा ज्ञानी चाहें जो भी हों वे केवल किसी मनुष्य की काया में ही क्यों प्रवेश करते है। आखिर अन्य इतर प्राणी भी तों उनके स्थान पर उठते बैठतें एवं गगंदगी करते होंगे परंतु कभी किसी गाय, भैंस, हाथी, बंदर, साँप आदि पर भूत सवार होते नही पाया जाता यह सब यदि अज्ञानता के कार्य है तो उनमें अज्ञान का अभाव है और यदि यह सब ज्ञान पूर्ण कार्य है तो उनमें ज्ञानका अभाव है। और यह सम्भव नही है कि जीव कभी किसी योनि में हों और उसमें न ज्ञान हो न अज्ञान । यहाँ निष्कर्ष यही निकलता है कि प्रेत, चुडेल इत्यादि का स्थित्व ईश्वर के गुण कर्म एवं स्वभाव के अनुकूल अथवा वेदानुकूल सिध्ध नही होता।

– दूसरा परिक्षण –

विवाद पर निर्णय लेने के लिये दूसरा परिक्षण है सृष्टि क्रम के अनुकूल होना । सृष्टि क्रम के अनुकूल होने का अर्थ है चराचर जगत के प्रत्यक्ष व परोक्ष में होनेवालें समस्त घटना चक्रों के अनुकूल होना। यदि कर्म संस्कार एवं वृत्ति का एक क्रम है तो वह अपने क्रम में ही घटित एवं फलित होगी। कोई कहे कि बिना कर्म के ही संस्कार आ गया अथवा वृत्तियाँ बिना संस्कार से उत्पन्न हो गई तो यह सृष्टि विद्या के विरुध्ध होगा। क्योंकि कर्म से ही संस्कार और संस्कार से वृत्तियाँ उभरती है। इसी तरह बीज अंकुर एवं पौधा यदि एक क्रम है तो वह अपने क्रम में ही रहेगी। कोई कहें कि बिना अंकुर के ही पौधा पैदा हो गया तो यह सृष्टि विद्या के विरुद्ध एवं अप्रमाणिक है।

जब बादल व वर्षा का अपना क्रम है कोइ कहे बिना जल के बादल एवं विना बादल के वर्षा तो यह सृष्टि विद्या के विरुध्ध एवं अमान्य है। जीव, कर्म, संस्कार, प्रारब्ध, जन्म एवं मृत्यु में भी कुछ ईश्वर प्रणीत शाश्वत सिध्धान्त है और जीव उन्ही सिध्धान्तो के अंतगर्त जन्मता मरता रहता है। जीव का एक क्षण भी ऐसा नही है जिसके लिये उसकी दशा का विधान नही उसकी दशा अनन्त काल तक के लिये पाँच भागों में विभक्त है वह है, जागृत, सुषुप्ति, स्वप्नावस्था, समाधि एवं मोक्षावस्था। इसके अतिरिक्त जीव के पास समय होता ही नही और ना ही कोई अतिरिक्त दशा होती है। इन दशाओं में प्रथम चार दशायें जीवन काल अथवा बंधनकाल है और अंतिम दशा मुक्तिकाल की दशा है।

जीवनकाल में (बंधनकाल) जैसा कि पूर्व कह आये है चार योनियाँ होती है जीव उनही चारो में से किसी न किसी योनि कों अर्जित करता है अर्थात पिन्डज, अंडज, उदमिज्ज, और जंगम इसके अतिरिक्त कोई पाँचवी योनिका विधान नही। जीव सम्बन्धी यह सब ईश्वर प्रणीत शाश्वत सिद्धांत है जों नित्य अनादि व अन्नत है। इसका न कभी उलंघन होता है ना ही इसके उलंघन करने की शक्ति किसी जीव में है। जीव सर्वदा सर्वथा ईश्वराधीन होता है।

ईश्वर प्रणीत विधानानुसार जीव मृत्यु के बाद या तो मोक्ष को प्राप्त होता है या तो पुनर्जन्म लेता है इसके अतिरिक्त कोइ तीसरा प्रबंध नही है यदि कोइ कहें कि जीव मृत्यु के बाद न जन्म लिया न ही मोक्ष को प्राप्त हुआ परन्तु भटकता रहा तो यह सृष्टि के नियम के विरुध्ध है अतः अप्रमाणिक है।

अधासु मन्द्रो डरतीर्वो भावाव स्यती द्धिवर्त निर्व नेषाट उर्ध्व ।यच्छेणीन स्थिर समुधं सुत मा (ऋग्वेद मंडइ १० शुक्त–६२ मंत्र २०)

सब प्राणी शरीर प्रकृतिके ही विकृत रूप है नमें बसनेवाला केवल आत्माा हों शिशुर्खमन्मक्षु चैतन्य है जो इस जन्म तथा अगले जनम संसार और मोक्ष इन दो मार्गो पर गतीमान रहता है ।

यहाँ तक हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि भूतप्रेत चुडैल आदिका स्थित्व प्रथम दो परिक्षण से सिध्ध नही हो पाया। अब तीसरी कसौटी पर देखा जाय।

तीसरा परिक्षण है कि आप्त वचनानुकूल होना।

इस परीक्षा के अंतगति यह विचारकरना है कि अनुभवी ऋषि–मुनियों ने इस विषय में क्या कहा है।

(१) जहाँ तक अभुआनें अर्थात हाथ पेर झटकने पटकने का प्रश्न है उसके लिये योगदर्शन में ब्रह्मर्षि पातंजलिजीने उसे **अंगमेजयत्व नामक कलेश बताया**

है ना कि भूतप्रेत दैत्य इत्यादि।

दुःखदौर्मनस्यां मेजयत्व श्वास प्रश्वास विक्षेप सहभुवः (योगदर्शन १/३१)

दुःख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व, श्वास प्रश्वास ये चित्त विक्षेपों के साथ–साथ उभरते है ,अंगो के हिलने डुलने छटपटाने व काँपने को अंगमेजयत्व कहते है।

(२) मृत्यृ के बाद सब जगह पुनर्जन्म का ही वर्णन है पुनर्जन्म न होकर प्रतयोनि को प्राप्त होने का कही वर्णन नही है। देखिये

देहिनोस्मिन्यथा देहे कोमारं यौवनं जरा ।

तथा देहान्तर–प्राप्ति धीरस्तत्र न मुह्यति।। (गीता २/१३)

जैसे शरीर को बाल्यावस्था, यौवनवस्था और वृध्धावस्था प्राप्त होती हे उसी तरह से जीव को दूसरे शरीर की प्राप्ति होती है।

वांसासि जिर्णानि यथा विहाय, नवानि गृहणाति नरो पराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा–न्यन्यानि संयाति नवानि देही ।। (गीता २/१२)

जैसे मनुष्य पुराना वस्त्र बदलता है वैसे ही जीव शरीर बदलता है।

जातस्पदि घ्रुवो मृत्यु घ्रुवं जन्म मृत्युस्य, च

तस्माधि परिहार्येऽर्थ नत्वं शोचिंतुमर्हसि (गीता–२/२७)

जन्म के बाद मृत्यृ और मृत्यृ के बाद जन्म निश्चित हैं। इसका टालना असंभव है।

(३) यदि भूतप्रेत चुडैल, दैत्य आदि को आसुरी जीव मानते है तो फिर जो लोग शास्त्र के विरूध्ध कार्य करते है ऐसे दम्भी क्रूर और अहंकारी लोगों को आसुरी वृत्तिवाला कहा गया है।

देखिये गीता –

कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।

मां चैवान्तः शरीरस्थं तान्विध्धासुरनिश्चयान ।। गीता १७/६

दम्भी, अहंकारी, शास्त्र विरुध्ध कार्य करनेवाले तथा दूसरो को कष्ट देनेवाले को आसुरी वृत्तिवाला जाना जाता है ।

(४) मृत्यृ के बाद पुनर्जन्म ही होता है तथा मृत्यृ के बाद और पुनर्जन्म के पूर्व जीव कब और क्या करता है उसका भी वेदो में अच्छी तरह विधान है यदि प्रेतयोनि होती तो ठिक इसी तरह उसका भी विधान अवश्य मिलता। देखिये–

आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद कपूंषि कृणुषे पुरूणि।

धास्युयोनिं प्रथम आविवेसा यो वाचमनु दितां चिकेत ।।

अर्थर्ववेद, कां–५ /अनु.१/सू–१/मं–२

धर्माचरण के कारण जीव को उत्तम शरीर तथा अधर्माचरण के कारण अधम शरीर प्राप्त होता है। शरीर छोडने के बाद जीव जल, औषधि व प्राण आदि मे प्रवेश करता है। उस के बाद गर्भाशय में स्थिर होके पुनर्जन्म लेता है।

यह वैदिक प्रमाण महर्षि दयानंदजो के ऋग्वेदाधि भाष्य भूमिका से प्राप्त हुआ है।

मृत्यु के बाद जीव विविध तत्वो सें स्फूर्ति प्राप्त करता है और फिर गर्भ में स्थिर हो जाता है। इसका एक एक दिन का वर्णन यजुर्वेद में दिया है। यदि जीव किसी भी कारण से गर्भ में स्थिर न होकर किसी अन्य दशा को (प्रेतयोनि) प्राप्त होता तो इसी विषय के अंतर्गत उसका भी वर्णन अवश्य होता। लेकिन ऐसा उल्लेख नही है।

देखिये–

सविता प्रथमे, हन्नग्नि द्वितीये, वायुस्तृतिय आदित्यश्चवतुर्थे, चन्द्रमाः पंचम ऋतुष्ठे मरुतः सप्तमे, बृहस्पतिरष्टमे मित्रोनवमे, वरूणो दशम

इन्द्र एकादशे विश्वदेवा द्वादशे । यजु.३९/६

जीव शरीर छोडने के प्रथम दिन सूर्य दूसरे दिन अग्नि, तीसरे दिन वायु, चौथे दिन महिना, पाँचवे दिन चन्द्रमा, छट्ठे दिन वसंताहि ऋतु, सातवें दिन मनुष्यादि प्राणी, आठवें दिन बडोंका रक्षक सूत्रात्मा वायु, नवमें दिन प्राणवायु, दशम दिन उदान वायु, ग्यारहवें दिन विजुली और बारहवे दिन सब दिव्य गुणो को प्राप्त होकर गर्भाशय को प्राप्त होता है।

(५) जहाँ–जहाँ भी असुर दैत्य दानव इत्यादि का वर्णन प्राप्त है वहाँ वहाँ उसका पारिभाषिक अथवा आलंकारिक अर्थ है जिसे अज्ञानियों ने गलत समझा और प्रेतयोनि ला कर खडा कर दिया।

ऋषि दयानंद सरस्वतीनें इस सम्बन्ध में कई भ्रांतियां दूर की है। ऋषिने अपने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में लिखा है जो निम्न प्रकार है।

एवमेवेन्द्रः कश्चिद्देहधारी देवराज आसीत ।

तस्य त्वष्टुरपत्येन वृत्राडसुरेण सह युध्धमभूत।

वृत्रासुरेन्द्रो निगलितोऽतो देवानां महद्भयमभूत ।

ते विष्णू सरणं गताः। विष्णू रुपायं वार्णितवान मया प्रविष्टेन समुद्र फेनेनायं हतो भविष्यतीति (पुराणवचन)

गलत अर्थ : त्वष्टा के पुत्र वृत्राक्षुरने देवों के राजा इन्द्र को निगल लिया। तब सब देवता लोग बडे भय युक्त होकर विष्णुके पास गये और तब विष्णुने

उसके मारने का उपाय बताया कि मै समुद्र के फेन में प्रविष्ट होऊँगा। तुम उस फेन को उठा कर वृत्रासुर को मारना वह मर जायेगा।

शुध्ध अर्थ : इन्द्र अर्थात सूर्यने अपनी किरणों से वृत अर्थात मेघ को मारता है। जब वह मेघ पृथिवी पर गिर पडता है तब वह अपने जल रूप शरीर को पृथ्वि पर फैला देता है। फिर उससें अनेक नदियाँ बल से परिपूर्ण होकर समुद्र में जा मिलती है।

महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी ने उपर के अशुध्ध एवं शुध्ध दोनों अर्थो को सामने रखकर आँखे खोल दी है कि किस तरह अज्ञानता के कारण वृत अर्थ मेघ करने के बजाय वृतासुर नामक कोई असुर बना दिया और इन्द्र का अर्थ सुर्य करने की बजाय इन्द्र नामक देवता बना दिया।

(६) गीता के अनुसार सृष्टि के पाँच पदार्थो को भूत कहते है और इन भूतों का जन्म अव्यक्त प्रकृति के गर्भ से होता है। देखिये –

ममयोनिर्महदब्रह्म तस्मिन्गामे दधाम्यहम ।
सम्भवः सर्वभूतानां तो भवति भारत ।। गीता ४/३

अव्यक्त प्रकृति सभी भूतों की योनि है उस गर्भ से सभी भूतों की उत्पति होती है। प्रेत के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द सरस्वतीजीने सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे समुल्लास में मनुस्मृति के आधार पर लिखा है कि जब जीव शरीर को छोड देता है तब उस मृतशरीर (लाश) को प्रेत कहा जाता है और मृत शरीर को भस्म कर देने के पश्चात उस मृत व्यकित को भूत कहा जाता है। जो भूत में हुआ हो अर्थात भूतकाल में (बीते दिनो में) हुआ हो। देखिये–

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेघसमाचरत्।
प्रेतहारेः समं तत्र दशरात्रेण शुध्यति ।। मनु.अ. ५./६५ ।।

(सत्यार्थ प्रकाश–समु. २)

जब गुरुका प्राणान्त हो तब मृतक शरीर जिसका नाम प्रेत है उसका दाह करनेवाला शिष्य प्रेतहार अथवा मृतक को उठानेवाले के साथ दशवें दिन शुध्ध होता है और जब शरीर जल चुका तब उसका नाम भूत होता है।

यदि जीव प्रेत योनि को प्राप्त होता है तब वह प्रेतयोनि उसे किसी मृत्यु के पश्चाद ही प्राप्त होती होगी क्योंकि बिना एक शरीर (योनि) छोडे दूसरा शरीर (योनि) प्राप्त होना असम्भव है। यदि ऐसा होता तो मृत्यु एवं पुनर्जन्म के अध्याय

(विषय) में ही उस प्रेत योनि का वर्णन अनिवार्यतः होता परन्तु जीव का मृत्यु के बाद प्रेतयोनि का वर्णन कही भी नही है।

इस तरह से आप्त वचनो की दृष्टि से भी भूतप्रेत, दैत्य, चुड़ेल आदि का कही भी प्रमाण प्राप्त नही होता।

चोथा परिक्षण :–

अब चौथी परीक्षा होती है कि आत्मा अथवा अंतरात्मानुकूल होना। जैसे किसी कारणवश कष्ट हुआ तो दूसरों का भी कष्ट होगा एसा विश्वास करना।

चूं कि भूतप्रेत की समस्या उसके पदार्थतः स्थित्व का है न कि वैचारिक तत्यका अतः भूतप्रेत पर यह परिक्षण लागू नही होता। हाँ यदि भूतप्रेत का स्थित्व सिध्ध हो जाय तब वह कैसा है, अच्छा है, बुरा है का परिक्षण इस चौथी परीक्षा के अंतगर्त आता।

पाँचवी परिक्षा

पँाचवी तथा अंतिम परीक्षा है कि किसी चीज के प्रमाण का होना। और न्याय दर्शन के अघ्याय–१, आहिनक–१, सूत्र –४–६ के अनुसार, प्रमाण संक्षिप्त में चार होते है।

(१) प्रत्यक्ष प्रमाण (२) अनुमान प्रमाण (अर्थापति सम्भव व अभाव) (३) उपमान (४) शब्द (ऐतिह्य) –

अब आओ इन चारो प्रकार के प्रमाणों की दृष्टि से भूतप्रेत, चुडेलादि के स्थित्व को सिध्ध करने का प्रयत्न किया जाय।

(१) प्रत्यक्ष प्रमाण में वस्तु को या तो नजर से देखा जाय या नाक से सूंघा जाय या कान से सुना जाय या त्वचा से र्स्पश किया जाय या जिह्व से स्वाद लिया जाय तब माना जाता है। भूतप्रेत इनमें से किसी भी तरह प्रत्यक्ष नही होता।

(२) अनुमान प्रमाण : इसमें अनुमान लगा लिया जाता हे जैसे कि कही धूँआ दिखलाई दिया तो कही न कही अग्नि का होना निश्चित हो जाता है।

अनुमान की दृष्टि से भूतप्रेत, चुडेल आदि चेतन्य शक्ति को माना जा सकता है क्योंकि जब एक व्यक्ति हाथ–पाँव झटकने पटकने लगता हे अथवा अपुआने लगता है तब उसका कोई कारण अवश्य होना चाहिये इस कारण के अंतगर्त भूतप्रेत, दैत्य इत्यादि को माना जा सकता है। किसी व्यकित के अभुआने हाथपाँव झटकने पटकने का यदि कोई स्पष्ट कारण प्राप्त हो तो ठीक है अन्यथा भूतप्रेत की सिध्धि होती है। इन कारणों की खोज हम आगे करेंगे अभी तो शेष

प्रमाणों की दृष्टि से भूतप्रेत आदि का परिक्षण कर लिया जाय।

उपमान :– इसमें किसी पदार्थ का वर्णन उपमा देकर बता दिया जाता है। जब दो पदार्थ एक ही प्रकार के अथवा एक ही जैसे गुण धर्म के होते है तब एक पदार्थ दूसरे के लिये उपमा बन जाता है।

भूतप्रेत दैत्य आदि अभी तक अनुपमेय रहे है। कही कोई उपमा भूतप्रेत के लिये नही मिलती अतः भूतप्रेत इस प्रमाण के अंतगर्त नही आते।

शब्द :– जो बात इतिहास सिध्ध एवं वेद संमर्थिति हो उन्हें ही शब्द प्रामाणित माना जाता है। इस विषय में आप्त वचन के अंतगर्त समुचित चर्चा आ चुकी है ।

अतः अब और चर्चा आवश्यक नहीं । इतिहास आर्ष ग्रथ एवं वेद आदि में भूतप्रेत आदि का कहीं भी वर्णन नहीं मिलता।

(पाँच प्रकारकी परीक्षा का न्याय दर्शन के अनुसार, विधान, सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास से लिया गया है)

विभिन्न विचार धारायें

जीव के विषय से जो विचार धारायें विश्व में है वह निम्न प्रकार है।

(१) जीव अमर है मृत्यु के बाद वह दफनाया कब्र में पड़ा रहता है। और कयामत के दिन ईश्वर – उसे उठाता है और नेकी के तथा बदी का फल देता है। (ईसाई तथा इस्लाम

(२) जीव ईश्वर का अंश है मृत्यु के बाद ईश्वर में लीन हो जाता है (अद्वैतवाद)

(३) जीवात्मा अपने सम्यक् ज्ञान, ध्यान, कर्म से स्वयं ईश्वर हो जाता है (जैन, बौद्ध)

(४) जीवात्मा अमर है और मृत्यु बाद या तो एक लम्बे काल के लिये मोक्ष को प्राप्त होता है या तो पुनर्जन्म लेता है (वेद)

इन चारों मान्यताओं में जीव, भूत–प्रेत, चुडैल इत्यादि हो जाता है ऐसा कहीं नहीं मिलता।

जीव के गुण :– इस सृष्टि के बनने का लक्ष यह है कि जीव अपने प्रारब्ध को भोग सके तथा भविष्य को सदज्ञान द्वारा मोक्ष की ओर ले जा सके। भूतप्रेत के सर्जन का कोई लक्ष नहीं दिखलाई पड़ता है और ना ही कोई कारण।

चैतन्य पदार्थ में अर्थात् में जीव में स्वभावतः उत्कर्ष की चेष्टा होती

है। यदि उसमें दुर्गुण आ जाते है तो वह मात्र जीवन काल में। यह भी स्वभाव जन्य हैं कि जीव कर्मकी चेष्टा करें और तब कर्म के लिये उसे साधन की आवश्यकता पडे। फिर अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिये वह जीवन धारण करें और अपनी चेष्टा में सफल या विफल हो।

भूतप्रेत यदि चैतन्य है तो उनमें कर्म की स्वभाविक चेष्टा अवश्य होनी चाहिये। किन्तु भूतप्रेत इत्यादि का न कोई स्वभया न कोई चेष्ठा प्राप्त होती है फिर उनके होनेका कोई लक्ष्य – लक्षण एवं कारण का प्रश्न ही नहीं उठता।

शास्त्रोक्त परीक्षण एवं प्रभावों की दृष्टि से भूतप्रेत इत्यादि की स्थिति चाहे जैसी हो पर एक बात सत्य हैं कि आत्मायें गुणी अवगुणी दोनों प्रकारकी होती हैं और दोनों प्रकारकी आत्मायें अच्छे व बुरे कर्म करती हैं गुणी आत्माओंमें भी कुछ अवगुण और अवगुणी आत्माओं में भी कुछ गुण का होना भी सम्भव हैं और यथावत कर्म तो सम्भव हैं ही।

शरीर हो या न हो आत्मायें तो होती ही हैं और वे चाह जहाँ भी हो जिस अवस्था में हो उनका गुण व स्वभाव उनके साथ रहता हैं। जब कभी भी कोई भी कर्म करेगा वह उसके गुण व स्वभाव के अनुकूल ही होगा।

यह सभी बातें शरीर धारी जीवों के लिये सत्य हैं। यदि प्रेतात्मायें शरीर धारी होती तो उनके लिये भी ये सारी बातें सत्य होती।

सृष्टि रचना सेलेकर आज पर्यन्त मनुष्य ने जो कुछ भी आत्मा व परमात्मा सम्बन्धी स्वाध्याय किया हैं वह यही बताता हैं कि जन्म व जीवन कर्म बंधन हैं। जीव का स्वभाविक गुण हैं कर्म करना। सो जन्म के बाद वह कर्म करता ही हैं। एक कार्य करने के बाद उसे अनेक कर्म करने पड़ते हैं। कर्म चक्रमें फँसा जीव जब अपना कर्म पूरा नहीं करपाता हैं तब उसे उन अधूरे कर्मों को करने के लिये तथा किये हुए कर्मों के फल को भोगने के लिये उसे पुनः पुनः जन्म लेना पड़ता हैं। जब जीव अपने कर्म व भोग पूरे कर लेता है तब उसे एक दीर्घकालिन मोक्ष प्राप्त होता है।

तब वह मात्र जीव रह जाता है। वह जन्म जीवन व मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाता है जीवन काल में जीव कर्मोन्मुखी होता है और मोक्ष काल में ओमोन्मुखी।

मृत्यु व जन्म के बीच का काल

जब जीव मुक्तिकाल में न हो और जीवन कालमें भी न हो तब वह मृत्यु व जन्म के बीच के काल में रहता है। मृत्यु के बाद और पुनर्जन्म से पूर्व

जो समय जीव को मिलता है उसमें उसे आगामी जीवन की तैयारी करनी रहती हैं। इस विषय में कुछ मतभेद हैं। परन्तु इतना तो अकाटय सत्य है कि मृत्यु व पुनर्जन्म के बीच समय लगता है। क्यों कि कोई ऐसी घटना नहीं जिसमें समय न लगें। इस विषयमें वेद के प्रमाणों से सत्यापन कर चुके है।

अब यहाँ यह मान लिया जाय कि जीव मृत्यु के बाद और पुनर्जन्म के पूर्व जो कुछ समय उसे मिलता है उस काल में वह कुछ कर सकता है ? ऐसी अवस्था में जीव के लिये मात्र बौद्धिक कर्म ही करने की सम्भावना हो सकती है क्यों कि तब उसके पास स्थूल शरीर एवं कर्मेन्द्रिय नहीं होती। अतः परिश्रम का प्रश्न ही नहीं उठता।

बौद्धिक कार्यों में स्वयं का सोच-विचार तथा दूसरों को समझाना एवं प्रभावित करना होता है। यदि जीव दूसरे शरीरस्थ जीवों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डाले तो प्रभावित जीव प्रभावानुकूल व्यवहार करें। यह सम्भव हो सकता है।

ब्रह्मांड में अनेकों मुक्त जीवात्मायें विचरती रहती है। ऐसी आत्मायें स्वस्थ-चित्त एवं ज्ञानी होती है। सम्भव है कि मोक्ष भोगी आत्मायें बंधनमुक्त आत्माओं का अवलोकन करती हो। यह भी सम्भव है कि किसी प्रकार एवं परिस्थिति में वे मुक्तात्मायें मानव के लिये आत्मप्रेरक अथवा आत्मबोधक भी हो।

कईबार ऐसा होता है कि मनुष्य के मनमें अनायास एवं अचानक कोई विचार उत्पन्न हो जाता है जो उसके भूत अथवा वर्तमान अथवा भविष्य के जीवन से सम्बन्धित होता है।

सूक्ष्म - जीव

वह एक शाश्वत सत्य है कि कारण के बिना कोई कार्य नहीं होता। कार्य व कारण एक दूसरे के प्रमाण है। भूतप्रेत यदि होते है तो उनके होने का कारण अवश्य होना चाहिये। जीवात्मा की हर स्थिति का कारण ज्ञात है। और वह है उसका कार्य। मनुष्य बीमार है तो कारणवश, स्वस्थ है तो कारणवश, जागृत है तो कारणवश, सुषुप्त है तो कारणवश, मृत्यु को प्राप्त होता है तो कारणवश, और जन्म लेता है तो कारणवश।

अब प्रश्न होता है कि जीव यदि प्रेतयोनि को प्राप्त होता है तो किस कारण ?

जीवात्मा एवं परमात्मा के विषय में जितने ग्रंथ उपलब्ध है उनमें प्रेतात्मा

के विषय में कोई वर्णन नहीं है। किन्तु उल्लेख न होने के कारण ही किसी चीज का न होना मान लेना भी ठीक नहीं।

एक विचार यह भी है कि प्रेत जीव की कोई अवदशावस्था हो सकती है। अनेकों प्राणी ऐसे है जो हमें प्रत्यक्ष दिखलाई नहीं पड़ते परन्तु है। और ऐसे प्राणी मनुष्य जीवन पर अपना प्रभाव डालते है। मेलेरिया के कीटाणु जब मनुष्य शरीर में प्रवेश कर जाते है तो उसे ज्वर आने लगता है कभी शर्दी कभी गर्मी लगती है। तेज ज्वर में मनुष्य अनायास बकता भी है। यह असाधारण दशा मूलतः रोग के कीटाणु अथवा जीव द्वारा ही मनुष्य (जीव) को प्राप्त होती है।

यदि कीटाणुं को भी प्रेत अथवा ग्रह कहा जाय तो सम्भव है कि इसी प्रकार जीव को किसी दशा विशेष में प्रेत भी कहा जा सके।

जीवात्मा कृमी अथवा कीटाणु के अनेकों रूपों में अदृश्य स्वरूप में जल, थल, वायु, आकाशादि में व्याप्त रहता है जो मानव–जीवन को प्रभावित करता है। इस दृष्टि से ऐसे प्रभावशाली जीवों को रोग ग्रह, महामारी या प्रेत कहने में कुछ व्यवहारिक लगता है। वैसे भी ग्रामीण जन–जीवनमें चेचक हैजा इत्यादि को माताजी आदि का प्रकोप ही माना जाता है और नाना प्रकार के पूंजापाठ जादूटोना तथा कर्मकाण्ड श्रद्धापूर्वक किया जाता है। जीव किसी भी योनि में रहकर मानव जीवन को प्रभावित करता ही है यह बात तो सर्वथा सत्य है। जंगल में अचानक जानवरों द्वारा मनुष्य पर आक्रमण, सर्पदंश, कुत्ते का काटना, मधुमक्खी अथवा भँवरों द्वारा काट खाना इत्यादि इसके प्रमाण है।

बिच्छु के दंश से बहुत प्रचंड वेदना उठती है मनुष्य तडफ उठता है, कई बार मृत्यु को भी प्राप्त होता है। कंहने का अभिप्राय यह है कि एक जीव के उत्पात से दूसरा जीव त्रस्त होता है। और इसी प्रकार किसी न किसी स्वरूप में किसी जीव के उत्पात से कुछ स्त्री–पुरुष त्रस्त होते है और तड़फड़ाते है।

उत्पाती जीवों का उत्पात करना लक्ष नहीं होता परन्तु स्वभाव होता है। त्रसित मनुष्य जाने–अनजाने में उत्पाती जीवों के स्वभाव का शिकार हो जाता है। मधुमक्खी को हम छेडते है वे हमें काटती है, साँप विच्छु आदि को हम जाने अनजाने स्पर्श करते है वे दंश देते है और फिर–उसकी प्रतिक्रिया शरीर में प्रारब्भ हो जाती है।

इन समस्त अवस्थाओं में मनुष्य के शारीरिक बल मनोवैज्ञानिक बल तथा उनके संस्कार काम करते है एक निर्बल मनुष्य थोडी सी परेशानी रोग या

– भयसे एक दम त्रस्त एवं हड़बड़ा जाता है जब कि स्वस्थ मनुष्य उसे वहन कर जाता है थोड़े से ज्वर के कारण एक व्यक्ति बिस्तर पकड़ लेता हे जब कि उतने ही ज्वर से दूसरा व्यक्ति नियमित अपना दैनिक जीवन व्यतीत करता है।

ग्रह, भूत, दैत्य, चुडैल आदि शब्द समाज मे विशेषतःअशिक्षित जनों मे भलीभाँति समाया हुआ है। जब कोई व्यक्ति अपने– परिवार व गाँव के लोगों को दुःखी करता है तो कहा जाता है वह परिवार मैं गाँव का– ग्रह है यदि– कोई आदमी और कोई जघन्य कार्य करता है तो उसे राक्षस या दैत्य कहा जाता है किसी कष्ट दायी स्त्री को चुडेलकी संज्ञा दी जाती है ये सभी भावना प्रज्ञ शब्द मात्र है जो उत्पाती जीव के लिये – ठीक उसी तरह– प्रयोग– किये जाते है जैसे दुष्ट पापी, अधम, नीच इत्यादि। वास्तव में भूतप्रेत, चुडैल इयत्तद संज्ञा नही अपितुं सर्वनाम है।

प्राणी स्वभाव व शक्ति

जीव द्वारा जीवों के लिये उत्पात के विषयमें कुछ और भी विचा रकरें।

(१) जीव जंगली जानवरके रूपमें मनुष्य को काट खाता है या मार डालता है।

(२) जीव कुत्तेके – रूपमें मनुष्यको काट लेता है और उपचार के मभाव जब उसके विषका प्रभाव पडता है तब मनुष्य असाधरण–हो जाता है और लगभग कुते के जैसे भूकभूक कर मर जाता है।

(३) जब सर्प व बिच्छु आदि–विषैले प्राणीके रुपमें काट लेते है और जब तक उनके विषके प्रभाव में मनुष्य रहता है तब तक असाधारण रहता है छटपटाता है। मुँह से झाग आता है चिल्लाता है और कभी कभी मर भी जाता है।

(४) जीव विषैले प्राणी के रूप में मनुष्य को मादकता अथवा आनन्द प्रदान करता है और जब तक मनुष्य मादकता या उन्माद के प्रभाव में रहता है तब तक असाधारण व्यवहार करता है। यानि चिल्लाता है, हँसता है, रोता है, उछलता है, छटपटाता है आदि।

(५) जीव सुक्ष्म प्राणी के रूप में मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जाता है और विविध प्रकार के रोग उत्पन्न करता है जब तक मनुष्य प्रभावित रहता है तब तक असाधारण रहता है।

(६) जीव सूक्ष्म प्राणी के रुप में मनुष्य के काम भी आता है। दूध से दही बनता है उसमें अत्याधिक जीवाणु उत्पन्न हो गये होते है जो मनुष्य के लिये उपयोगी हैं। जीवाणु उत्पन्न करके मनुष्य के लिये उपयोग करना आयुर्वेद (मेडीकल सायन्स)का विषय हैं।

(७) जिस तरह घोडा, ऊँट, बैल, गाय, भैंस को नियंत्रण में रखकर उनका उपयोग मनुष्य करता है उसी तरह सूक्ष्मजीवों का भी उपयोग सम्भव है।

(८) जीव सूक्ष्म जीवन में अरबों की संख्या में आकाश में मँडराते रहते है किन जीवों का क्या उपयोग किया जा सकता है यह अपने आप में बड़ा उलझा हुआ समस्या का सागर है।

(९) वायु के झोंकों में, जल के तरंगों में, पृथ्वी की तह, आकाश के स्थान में भी असंख्य उपयोगी बिनउपयोगी जीव जन्मते–मरते एवं विचरते रहते है।

(१०) मनुष्य जाने या न जाने परन्तु सूक्ष्मजीव मनुष्य को जानते है।

(११) मनुष्य के सकाम निष्काम व अकाम कर्मों से अन्य जीव प्रभावित होते है और यथायोग्य कार्य करते है सहन करते है या आनन्द लेते है।

(१२) सूक्ष्मजीव (कृमि) मनुष्य के सहायक भी है और दुश्मन भी है। यथा स्थिति मनुष्य के साथ व्यवहार करते है।

(१३) सूक्ष्म जीवों (कृमि) में चेतना थोडी घनीमात्रा में होती है। जैसे मनुष्य शुद्ध बुध्धि, मन्दबुध्धि, एवं पागल इत्यादि होते है उसी तरह ब्रह्मांड में चेतन जीव सूक्ष्म जीव को प्राप्त होकर चैतन्य, अर्ध–चैतन्य अथवा प्रचुर चैतन्य होते है।

(१४) चेतना–प्रज्ञ सूक्ष्म जीवों का उपयोग मनुष्य के लिये सम्भव है।

(१५) जीव अपने सूक्ष्म शरीर अथवा स्थूल शरीर में रहकर भी दूसरे जीव को प्रभावित कर सकता है और वह अपने शरीर को छोडकर दूसरे जीव के शरीर में प्रवेश करकें भी उसे प्रभावित कर सकता है।

(१६) मनुष्य जब तक शुभ कर्मों द्वारा कर्म बंधन–मुक्त नहीं होता तब तक उसी शरीर की सीमा में बंद रहना पडता है जब वह कर्म बंधन मुक्त हो जाता है तब उसे अपना शरीर छोडकर पर काया में इच्छानुकूल प्रविष्ट होने की

शक्ति प्राप्त हो जाती है।

भगवान पातंजलि महाराज ने अपने वेद विदित योगदर्शन के विभूतिपाद के सूत्र में लिखा है।

बन्ध कारणशैथिल्यात् प्रचार संवेदनाच्चय चितस्य पर शरीरावेशः।। योग ३/३८

अर्थः- जिन कारणों से जीव जीवन बंधन में रहता है उन कारणों के समाप्त होने पर जीव निकास मार्ग जान लेता है और अपने शरीर से निकलकर दूसरे शरीर में जा सकता है (आचार्य उदयवीर शास्त्री कृत भाष्य में संक्षिप्त में दिया गया है।)

(१७) परकाया प्रवेश का अभिप्राय यह नहीं कि एक जीव दूसरे जीव के शरीर में प्रविष्ट हो जाय। यहाँ परकाया (शरीर) का अर्थ है गर्भ।

(१८) अपनी काया स्वेच्छासे छोड़कर गर्भ (पर-काया)में प्रवेशना जीव की एक बहुत बडी योग सिद्धि है। ऐसी आत्मा कभी किसीको पीडा नहीं दे सकती अपितु उत्कर्ष की ओर ले चल सकती है।

(१९) पुण्यात्माओं में जो योग शक्ति है उसका दुरुयपोग उनके द्वारा असम्भव है। उपयोग भी आवश्यक नहीं। शक्तिओंका दुरुपयोग नहीं होता है और ना ही अनावश्यक उपयोग। योगी आत्मोत्थान के अतिरिक्त न कुछ सोचते है न कुछ करते है। सिद्धियों को प्राप्त महात्मा आत्मोत्थान के ऐसे स्तर पर पहुँच गये होते है कि उन्हें संध्या के अतिरिक्त किसी भी वस्तु से लगाव नहीं रह जाता। निरालम्ब असम्प्रज्ञात समाधि में ही वे लीन रहते है। देश, दुनिया, अपना, पराया यहाँ तक कि स्वयं को भी वे भूल गये होते है। ऐसी दशा में उसके द्वारा अर्जित, संग्रहीत शक्तियों के उपयोग तक की भी उन्हें आवश्यकता नही पडती।

(२०) जो जीव स्वछंद ब्रह्मांड में विचर रहे है और जो जगत में जीवन-यापन कर रहे है दोनों के आत्मिक प्रकार में कोई भिन्नता नहीं। एक कर्म पूरा कर के बंधन-मुक्त हो चुका है तो दूसरा अभी कर्म बंधन में फँसा मुक्ति के प्रयत्न में है। जिस तरह एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से व्यवहार करता है वैसे ही स्वछंद जीव दूसरे स्वछंद या बंधनमुक्त जीव से व्यवहार के करने की शक्यता है। स्थूल शरीरस्थ जीव सूक्ष्म शरीरस्थ जीव से याचना करें और बोद्धिक या मानसिक सहायता प्राप्त करें यह भी सम्भव है। किन्तु उन मुक्तात्माओं से कोई कर्म करवाना या अभद्र व्यवहार करवाना अथवा किसी भी अशुभ अभद्र प्रकार की सहायता प्राप्त करना, सर्वथा, सर्वदा असम्भव है। यदि ऐसा हो तो मोक्ष, जीवन एवं कर्म के सिद्धान्त ही खंडित हो जाय। अशुभ एवं अभद्र संसारिक जीवन का विषय है योगी व

मुक्तात्माओं का नही।

जीव की सिद्धियाँ

(१) भविष्य ज्ञान (योग/३/१६)

(२) पूर्व जन्मों की बातों का ज्ञान व पहचान (योग/३/१८)

(३) अदृश्य होना। (योग ३/२१)

(४) भार रहित होना। (योग ३/३९/४२)

(५) परकाया प्रवेश, जल आदि में चलना। (योग ३/३८)

(६) सभी प्राणियों की भाषा का ज्ञान। (योग ३/१७)

(७) दूसरे के मन को जान लेना। (योग ३/२२)

(८) मृत्यु को जान लेना। (योग ३/१९)

(९) मैत्रीबल प्राप्त कर लेना। (योग ३/२३)

(१०) शारीरिक बल प्राप्त करना। (योग ३/२८)

(११) सुक्ष्म व दूर की वस्तुओं व शब्दों का ज्ञान। (योग ३/२५)

(१२) लोक–लोकान्तरों का ज्ञान। (योग ३/२६–२९ योग.)

(१३) शरीर विज्ञान जानना। (योग ३/२९)

(१४) भूख–प्यास पर विजय। (योग ३/३०)

(१५) अग्नि ज्वाला स्वरूप धारण करना। (योग ३/४०)

(१६) भूतों पर विजय। (योग ३/४४, ४५, ४९)

(१७) अनिष्ट योग। (योग ३/५१ योग–)

(१८) कुछ योगी, सिद्धियों को प्राप्त करने के अनन्तर ही किन्हीं २ कारणों से क्षिप्तावस्था को प्राप्त हो जात है। उनकी निरुध्धावस्था टूट जाती है। ऐसे क्षिप्त योगी अपने में संगृहीत योग शक्ति का कुछ उपयोग करते है। योग की ये शक्तियाँ जो जीव प्राप्त कर सकता है वे योगशास्त्र के अनुसार निम्न प्रकारों की हो सकती है।

(१) पूर्वजन्मों का ज्ञान (२) भविष्य में घटने वाली सामान्य घटनायें (३) दूसरे के मनको जान लेना (४) इतर प्राज्ञाओं की भाषा का ज्ञान (५) अपनी मृत्यु का ज्ञान (६) मैत्रीबल (७) शारीरिक बल (८) शरीर विज्ञान (९) भूख–प्यास पर विजय (१०) पंचभूतों पर विजय (११) भार रहित होना (१२) पानी, कीचड़ कांटों पर चलना (१३) अग्नि स्वरूप होना (१४) अदृस्य होना (१५) पर काया प्रवेश

उपरोक्त जीव के योगशक्तियों का प्रक्षेप इत्यादि न मान कर यदि निर्विवाद

मान लिया जाय तो भी प्रेतयोनि का समाधान नहीं होता क्योंकि यह सब वर्तमान के प्रत्यक्ष जीवन की बातें है।

– प्रारब्ध –

जगत् का हर प्राणी अपने कर्मानुसार जीवन भोगता है। जगत् में दुःख व दुःख का कारण कर्म है। इस ईश्वर प्रणीत शाश्वत नियम में किसी का प्रभाव पड नहीं सकता।

ईश्वर प्रणीत हर क्रिया–कलाप सुव्यवस्थित, सुनियंत्रित, तथा सुनिश्चित है। कोई भी चीज अनिश्चित नहीं जिस किसी कार्य में नियम अथवा नियंत्रण नहीं वह कभी ईश्वरीय कार्य नहीं हो सकता।

सृष्टि के शाश्वत नियमों के अनुसार जब तक जीव शरीरी रहता है तब तक वह कार्यक्षम रहता है। जैसे ही वह शरीर छोड़ता है उसकी कार्य करने की क्षमता समाप्त हो जाती है।

विचार करने से पता चलता है कि भूतप्रेत इत्यादि का न तो कहीं उपयोग हे ना ही कोई आवश्यकता। यहि भूतप्रेत जीव है तो वे अल्पज्ञ है और उन्हें मुक्ति व बंधन के शाश्वत नियमों में ही रहना पडेगा। उससे बाहर जाना ईश्वरीय नियम के विरुद्ध है। अतः अशक्य है। और यदि भूतप्रेत जड है तो वे जीव के आधिन है। और उसका उपयोग जीव अपनी स्वेच्छा से कर सकता है। उसकी अपनी शक्ति कुछ नहीं वह भोग्य है भोगी नहीं व उपयोगी है योगी नहीं।

जड़–चेतन

शरीर के अन्दर या बाहर जो कुछ भी प्रक्रियायें अथवा प्रतिक्रियायें होती है वे अंतःकरण द्वारा प्रभावित होती है। मनुष्य जो कुछ भी मनस्क या अमनस्क कार्य करता है वह अंतकरण से प्रयावित होता है। और मन व चित मनुष्य के संस्कार, देश, काल, एवं परिस्थिति द्वारा प्रभावित होता है।

जड़ व चेतन के समन्वय से व्यवस्थित जीवन अत्यंत उलझे, सुलझे वैज्ञानिक, अथवा मनोवैज्ञानिक तथ्यो से परिपूर्ण होता है। जड़ व चेतन से समुचित समन्वयित होने के कारण जीवन पर सदैव–जड व चैतन्य पदार्थो का प्रभाव पड़ता है। उसका हर कार्यकलाप या तो जड़ या चैतन्य से सम्बन्धित होता है। इन्ही जड़ चेतन के प्रभाववश मनुष्य कितने ही साधारण तथा असाधारण कार्य करता है।

जड़ पदार्थ की कुछ प्रक्रियायें सीधे शरीर से सम्बन्ध रखती है। और कुछ प्रक्रियायें चाहे जड पदार्थ से उतपन्न हुई हो या चैतन्य से उस मे अंतःकरण की मध्यस्थता रहती ही है।

जीवन में जड़ या चेतन के प्रभाववश जो कुछ प्रक्रियायें अथवा प्रतिक्रियायें होती है उसके कारण, जीव या तो सुख–शांति प्राप्त करता है या तो दुःख।

जब जीव सुखी होता है तो उसमें उत्साह, साहस, गरिमा, विवेक तथा पवित्र भावनायें उत्पन्न होती है और यह समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। परन्तु जब जीव दुःखी होता है तब वह हतप्रभ, विवेकहीन तथा अकर्मण्य सा हो जाता है। उसका अहंकार उसे प्रभावित नही कर सकता। वह अपनी प्रतिष्ठा खो बैठता है। अत्यंत निराशा एवं असमंज्यस्यतावश कई बार वह व्यर्थ एवं अनिच्छनीय कार्य कर बेठता है।

सुख दुःख की गुत्थी इतनी उलझी हुई है कि उसका समझना कठिन है।

कई बार मनुष्य अकारण ही बड़ा प्रसन्न या अप्रसन्न रहता है। इसका कुछ न कुछ कारण अवश्य होता है परन्तु वह समझ के बाहर होता है।

कल्पना

इस सम्बन्ध में यह भी विचार करना उचित होगा कि प्रारब्ध चाहें जैसा हो वह जीव को अनिवार्यतः भोगना ही पड़ता है।

यदि भूतप्रेत को भी थोड़ी देर के लिये एक योनि मान लिया जाय औ योनि को प्राप्त होना प्रारब्धवत् मान लिया जाय तो उसका अर्थ यह होगा कि भूतप्रेत अपने प्रारब्ध को भोगने के लिये हुए है। और तब उन्हे भी पशु–पक्षी, जानवर, झाड़, इत्यादि की तरह भोग योनि ही माननी पडेगी। तब भोगयोनि में होने के नाते उन्हें मात्र प्रारब्ध को भोगना ही होगा ना कि बौद्धिक कर्म स्वतंत्रता।

यह बात अवश्य माननी पड़ेगी कि भोग योनि में भी जीव कई बार मनुष्य (कर्मयोनि)के लिये कष्टदायी होता है। जैसे जंगल में अचानक जानवरो द्वारा मनुष्य पर आक्रमण, सर्पदंश अथवा श्वान का काटना आदि। परन्तु इसमें आक्रमक प्राणियों का विवेक काम नहीं करता। इसमे उनका स्वभाव व पिपासा कार्य करती है।

अब यदि भूतप्रेत की ऐसी कोई मनुष्य के सताने की स्वाभाविक पिपासा मान लिया जाय तो फिर उसका यह स्वभाव सब मनुष्यों के लिये समान होना

चाहिये क्योंकि भोगयोनि में भोग भोगने में जीव का विवेक कार्य नही करता। परन्तु ऐसा होता नहीं। भूतप्रेत का आक्रमण किसी एक व्यक्ति विशेष पर होता है और उसी पर होता रहता है। उसके इर्द गिर्द अनेकों व्यक्ति घेरे रहते है। परन्तु किसी पर भूतप्रेत का आक्रमण नहीं होता। कभी ऐसा नहीं हुआ कि भूतप्रेतने किसी एक को छोड़कर किसी दूसरे पर आक्रमण कर दिया हो।

इसके अतिरिक्त यदि एक भूत विभिन्न व्यक्तिओ को भिन्न–भिन्न समय पर एक एक करके पकड़ता है। तब ऐसे समी लोगों का हाव–भाव व बोलचाल जब कभी भी उन्हें भूतने पकड़ा हो सब एक ही जैसे होने चाहिए क्योंकि भूत एक ही है।

जिस तरह से अंडज, पिन्डज, उद्भिज तथा स्थावर नामक चार योनियाँ संसार में है उसी तरह भूतप्रेत, चुड़ैल आदि को एक प्रकार की पाँचवीं योनि मान ली जाय तो फिर जीवात्मा के इस योनि में जन्म व मृत्यु का आध्धात्मिक विज्ञान होना चाहिये तथा स्थूव या सुक्ष्म कुछ प्रमाण व दृष्टांत भी होने चाहिये। उसके कुछ स्वाभाविक नियम व पद्धति भी होनी चाहिए परन्तु ऐसा कोई प्रमासा कहीं भी मिलता नहीं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे अध्याय में बहुत ही स्पष्ट शब्दों में भूतप्रेत के स्थित्व को नकारा है। ऋषिने मनुस्मृति के पाँचवे अध्याय का ६५वाँ सूत्र देकर कहा कि मनुष्य जब मृत्यु को प्राप्त होता है तब उसकी लाश (मृत शरीर) को प्रेत कहते है और मृतशरीर को जला देने के बाद उस व्यक्ति के बीते संस्मरणोंको भूत कहते है।

गुरो प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरत्।
प्रेतहारैः समं तंत्रः द–रात्रेण शुध्यति ।। मनु-५/३५ ।।

आखिर वह क्या रहस्य है ?

जब भूतप्रेत चुडैल आदि की योनि को अस्वीकार कर दिया जाता है तब प्रश्न उठता है कि आखिर क्या तथ्य या क्या कारण है कि-हजारों लोग इसमें विश्वास करते है और हमारे सामने अभुआते है यानि अपने हाथ–पाँव सर अथवा सारे शरीर को झटकते पटकते हैं जो साधारण तौर पर तो नही किया जा सकता और नाही सभी को झुठलाया जा सकता है।

चित्त में प्रतिक्रियायें

शरीर के अन्दर कुछ स्वभावतः तथा कुछ कारण वश प्रक्रियायें तथा प्रतिक्रियायें होती है। जो ज्ञान–विज्ञान अथवा मनोविज्ञान समर्थित है।

महर्षि पातंजलिजीने विघ्न का वर्णन किया है।

दुःख दौर्मनस्याङ्गमेजयत्व श्वास प्रश्वासा
विक्षेप सहभुवः (समाधिपाद /३१) ।।

अर्थ : दुःख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व, श्वास, प्रश्वास ये सब विघ्न चितविक्षेपों के साथ उभरते रहते है।

१) दुःख : अपने प्रतिकुल अनुभव का होना।
२) दोर्मनस्य : मन का उद्विग्न होना।
३) अंगमेजयत्व : शारीरिक कम्पन्न।
४) श्वास : नासिका द्वारा वायु को अंदर खीचना।
५) प्रश्वास : वायु को बाहर फेंकना।

उक्त पाँच विघ्न चित्त के विक्षेप के साथ उभरते है। अर्थात जब चित्त विक्षिप्त हो और उसके साथ–साथ विघ्न भी उभरा हो तब मनुष्य अस्थिर तथा असाधारण हो उठता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वतीने सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे समुल्लास में लिखा है कि सन्निपात आदि ज्वर अथवा उन्माद आदि रोगों को लोग अज्ञानता वश भूतप्रेत मान लेते हैं।

प्रत्यक्ष भी देखा जा सकता है। यदि किसी व्यक्ति की सांसों को रोक दो और देखो वह कितना छटपटाता है यहाँ तक की वह मर जाता है। उसकी विकरालता को प्रत्यक्ष देखने वाला ही समझ सकता है।

इसी तरह उन्माद का प्रकोप है। कोई व्यक्ति जब उन्मादित हो जाता है तो वह अत्यंत असाधारण व्यवहार करता है।

उन्माद में मनुष्य की बुद्धि विकृत हो जाती है और वह विचित्र व अविवेकी व्यवहार करने लगता है जैसे हाथ पैर पटकना, या झटकना, तेजी से दौड़ना, कूदना किसीको दबोचकर पकड़ लेना, बुत बन पड़ना इत्यादि।

महर्षि पातंजलि ने योगदर्शन में लिखा है कि चित्त के विक्षेप होते है इनमें से किन्हीं विक्षेप या विक्षेपों के उपर बताये पाँच विघ्नों में से कोई विघ्ध या कई विघ्न एक साथ सहचारी होकर मनुष्य को कष्ट देते है।

व्याधि स्त्यान संशय प्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शना लब्धभूमिकत्वानवस्थितत्त्वानि चित्तविक्षेपास्ते ऽन्तरायाः ।। योग - १/३०

अर्थ – व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अवरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्त्व, अनवास्थितत्त्व ये नव चित्त के विक्षेप है।

१) व्याधि – शरीर के रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र इन सात धातुओं तथा कफ, पित्त व वात इन तीन प्रकार के दोषों में विषमता आ जाने से अनेकों रोग व व्याधि उत्पन्न हो जाते है जो चितं को बेचैन कर देते है ऐसे व्याधित चित्त से मनुष्य कईबार असाधारण एवं अप्रासंगिक व्यवहार कर जाता है।

२) स्त्यान – ज्ञान होते हुए भी रुचि विहीन अकर्मण्य एवं निःचेष्ट रहना (अंतःकरण यानि चित्त, मन, बुद्धि व अहंकार का निर्बल होना)

३) संशय – हर बात में शंकाशील रहना, संदिग्धावस्था में असमंजस में पडे रहना मन का अस्थिर व चलायमान रहना।

४) प्रमाद – सत्य की उपेक्षा, अस्वस्थमन

५) आलस्य – मंदबुद्धि से कर्तव्य पारायणताका अभाव, हतप्रभता, शरीर में तेज, ओज एवं अहंकार का अभाव, स्फूर्ति विहीनता ।

६) अवरति – तृष्णा एवं विषयाशक्ति में डूबे रहना।

७) भ्रान्तिदर्शन – भ्रम एवं मिथ्याभास से प्रभावित रहना ।

८) अलब्ध–भूमिकत्व – मन को एकाग्र करके समाधिस्थ अवस्था के चार स्तर है मधुमति, मधुप्रतिका, प्रज्ञाज्योति और अतिक्रान्ति भावनीय इन्हें चार योग भूमि भी कहा जाता है। इनको न प्राप्त करना। निष्फल योग।

९) अनवास्थितत्व – योगाभ्यास में चित्त का स्थिर व अवस्थित न होना। वृत्तियों का समुचित निषेध न कर पाना और अन्य मनस्क अथवा अव्यवस्थित हो जाना।

अब विचार करें कि एक व्यक्ति है जो संशय तथा भ्रान्तिदर्शन नामक विक्षेपों से त्रस्त है उसके साथ–साथ वह दौर्मनस्य विध्न का शिकार है। ऐसी दशा में उस व्यकित का व्यवहार कैसा होगा।

उसका मन, व्यग्र तथा व्यथित होगा हर बात में उसे शंका होगी तथा हर वस्तु से उसे भ्रान्ति उत्पन्न होगी।

अंधेरे में यदि वह अकेले जा रहा होगा तो साधारण झाडियों या छोटें मोटे पेड पौधों को वह कोई आदमी,या जानवर समझ बैठेगा। डर केमारा भागेगा, उसे लगेगा कि उसके लिये ही कोई चोर या खतरनाक जानवर खडा है। वह चित्कार

उठेगा। भागते–भागते उसका दम फूल जायेगा। आतंक भय का उसके मन व बुद्धि पर इतना प्रभाव पडेगा कि वह बिमार पड जायेगा। और अस्वस्थावस्था में भ्रामिक वस्तु की आँखों देखी कथा कहेगा या बड़बडायेगा।

महर्षि पातंजलिजीने विघ्नों चित्त विक्षेपों तथा क्लेशों का अति सुक्ष्म वर्णन करके मात्र बीजरूप ज्ञान दिया है। और केवलं मोक्ष को लक्ष रखकर अष्टांग योग का विधान किया तथा मन व चित्त सम्बन्धी ज्ञान को अध्यात्म की और मोड दिया है। वे ऋषि थें उनके रोम–रोम में उत्थान, प्रकाश एवं अघ्ध्यात्म भरा पड़ा था। पाप पतित जीवन उनका विषय न था और ना ही कभी वे निम्न प्रकार का चिंतन संभवतः किया होगा, और ना ही अधार्मिक अथवा अनैतिक जीवन का अनुभव था। ऐसे महान व पवित्र आत्मा के लिये योग भ्रष्टता या कर्मच्युतता के विषय में विस्तार पूर्ण लिखना स्वाभाविक नहीं। अतः निम्न स्तरीय तथा भ्रष्ट जीवन सम्बन्धी ज्ञान वर्णित नहीं हो पाया।

यही कारण है कि अंगमेजयत्व संशय भ्रान्तिदर्शन आदि विध्नों या चित्त विक्षेप्रों का मन स्थिर होने में बाधक के अतिरिक्त जीवन में अन्य क्या क्या प्रभाव डालते है वर्णित अथवा प्रकाशित नही हो पाया।

मनुष्य जीवन जड़ व चेतन दोनों का समन्वय है अतः वह जड़ तथा चेतन दोनों के गुण व धर्म से प्रभावित होता है। जड़ वस्तु के सदुपयोग का जीवन पर सुखद प्रभाव पड़ता है और उसके दुररुपोग का दुःखद प्रभाव पडता है। इसी तरह जीव जब चैतन्य गुणों का वासनापूर्ण दुरुपयोग करता है तो अवनति को प्राप्त होता है और जब सदुपयोग करता है तो आत्मोन्नति कर जाता है। अतः जड़ व चेतन का जीवन पर पड़ते प्रभाव पर विचार करना आवश्यक है।

चैतन्य शक्ति का प्रभाव

मनुष्य को जीवन में तीन प्रकार का शरीर प्राप्त होता है। (१) स्थूल (२) सूक्ष्म और (३) कारण शरीर जीव की वृत्तियों का सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर से रहता है। सूक्ष्म शरीर के चार अंग है। (१) चित्त (२) मन (३) बुद्धि (४) अहंकार (कही कही स्वयं जीव को भी पाँचवाँ अंग माना गया है) मनुष्य जो कुछ भी अच्छा या बुरा काम करता है उससे उसे अच्छा या बुरा अनुभव प्राप्त होता है। और ये अनुभव अंतःकरण में संचित रह जाते है। इन संचित अनुभव से वृत्तियों का निर्माण होता है और ये वृत्तियाँ ही संस्कार है। अंतःकरण में वह कर्म द् संस्कार संचित रहते है। यदि कर्म दयामय था तो दयावृत्ति अथवा दया के संस्कार और यदि कर्म क्रूरता

पूर्ण था तो क्रूर वृत्ति और क्रूरता के संस्कार का निर्माण होता है।

ये विविध संस्कार योग्य परिस्थिति तथा वातावरण में जागृत हो जाते है। और व्यक्ति में दया, क्रूरता, क्रोध, करुणा, क्षोभ, मोह व आमोद–प्रमोद इत्यादि के भाव उदित हो जाते है। और मनुष्य अपने उस उदित भाव के अनुकूल तब तक व्यवहार करता रहता है जब तक कि वह उस भाव विशेष के प्रभाव में रहता है।

अंतर्मन मे संस्कारवत् समाई भावनायें निम्न प्रकार की होती है।

(१) काम (२) क्रोध (३) मद(४) मोह (५) लोभ (६) क्षोभ (७) सुख (८) संतोष (९) दया (१०) भय

उक्त दशों भाव जब तक साधारण रहते हे तब तक मनुष्यका जीवन अच्छा या बुरा परन्तु व्यवहारिक रहता है परन्तु जब ये भाव असाधारण हो जाते है तब मनुष्य सर्वसाधारण से पृथक जाना जाता है। उग्रावस्था में ऐसे व्यक्ति को झक्की, सनकी, जिद्दी, मूर्ख, अर्धपागल इत्यादि से जानते है।

अंतःकरण में समाई भावनायें बड़ी अगाध होंती है और मन की शक्ति बडी अपार। अपार मन कौन सी भावना की तरंग में कहाँ तक झोला खा जायेगा और जीवन को कहाँ से कहाँ तक झकोर देगा यह जानना कठिन है। मात्र–संभावनाओ का ही वर्णन किया जा सकता है।

अंतःकरण में छिपी स्मृतियाँ केवल वर्तमान जीवन को ही नहीं होती। वह पिछलें जन्मों को भी होती है और योग्य वातावरण पाकर उदिन हो जाती है और जीवन को प्रचावित करती है।

पिछले जन्म में जल में डूबकर मरनेवाला व्यक्ति जलाशय देखकर स्वभावतः भयभित हो जाता है। इसी तरह आग में जलकर मरनेवाला मनुष्य दूसरे जन्म में आग से स्वभावतः अथवा संस्कारवत डरता है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति के वर्तमान जीवन के मनोबल वास्तविक जीवन तथा वर्तमान वातावरण का भी महत्त्व रहता है।

– चित्त वृत्ति –

कुछ प्रतिक्रियायें वर्तमान जीवन में घटी घटनाओं के कारण भी हो सकती है जिनको स्वाध्याय करके समझा जा सकता है। परन्तु पूर्वजीवन के संस्कारों अथवा संस्मरणों का प्रभाव जब वर्तमान जीवन पर पड़ता है तो उसका अध्ययन कुछ कठिन होता है। न समझे प्रतिक्रियात्मक प्रभाव को भद्रलोग

दैनिक अथवा प्रारब्धिक प्रतिक्रियायें मानते हैं परन्तु अज्ञानीजन उसे दानविक प्रकोप अथवा भूतप्रेत आदि का उत्पात मानते हैं।

महर्षि पातंजलिजीने अंगमेजयत्व नामक विघ्न तथा संशय व भ्रांति दर्शन आदि चित्त विक्षेपों का वर्णन कर के संसार का बड़ा उपकार किया है मनुष्य को स्वाध्याय के लिये दिशाबोध करा दिया है।

महर्षि पातंजलि ने चित्तकी पाँच प्रकार की- "वृत्ति" का वर्णन किया है जो कि क्लेशकी उत्पत्ति में सहायक होती है।

प्रमाण विपर्य विकल्प निद्रास्मृतयः। योग–१–६।

अर्थ : प्रमाण, विपर्यय विकल्प, निद्रा और स्मृति ये पाँच प्रकार की चित्त की वृत्तियाँ होती हैं।

(१) **प्रमाणवृत्ति** – प्रमाण वृत्ति के तीन भेद हैं प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम।

(अ) **प्रत्यक्षवृत्ति :** उसे कहते हैं जो ज्ञानेन्द्रियाँ द्वारा आत्मा को बोध होता है।

(ब) अनुमानवृत्ति : उसे कहते हैं जो जीव एक वस्तु देखकर दूसरी वस्तु के बोध को प्राप्त करले, जैसे बालक को देख उसके मात–पिता का। चित्र को देख चित्रकार का।

(क) आगमवृत्ति : उस आत्मबोध को कहते हैं जो मनुष्य को विद्वान महापुरुषों के आप्त वचनों से प्राप्त होती है।

(२) **विपर्ययवृत्ति** – मिथ्या ज्ञान को विपर्यय वृत्ति कहते हैं जैसे अंधेरे में झाडी इत्यादि को देखकर किसी जानवर आदि का विश्वास करना।

(३) **विकल्पवृत्ति** – जब किन्हीं शब्दों के आधार पर किसी वस्तु का आत्मा को बोध होता है तब उसे विकल्प वृत्ति कहते हैं।

(४) **निद्रावृत्ति** – यह एक अभाववृत्ति है। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त होनेवाले सभी ज्ञान के अभाव की वृत्ति को निद्रावृत्ति कहा जाता है।

(५) **स्मृतिवृत्ति** – बीते हुए अनुभवों का संस्मरण स्मृतिवृत्ति है।

क्लेश

जीवको प्राप्त होने वाले क्लेशों के पाँच भेद हैं : (१) अविद्या (२) अस्मिता (३) राग (४) द्वेष (४) अभिनिवेश । इन कारणों से जीव दुःखी होता है। इसी लिये ये पाँचों क्लेश कहे गये हैं।

अविद्या अस्मिता रागद्वेषाभिनिवेशाः पाँच क्लेशः।। योग – २/३ ।।

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश इन पाँच कारणों को क्लेश कहते हैं।

अविद्या – जब ज्ञान विज्ञान के विपरीत मनुष्य की धारणा बन जाती है और वह ज्ञानप्रद कम और श्रद्धाप्रद अधिक हो जाता है। तब अविद्यामें भटकने लग जाता हैं। वास्तविकता को न स्वीकार करना और मिथ्या को सत्य मानना अविद्या है।

अस्मिता – आत्मा व बुद्धि की भिन्नता को न स्वीकारना अस्मिता है।

राग – उस अविद्या अर्थात् क्लेश को कहते हैं जिसमें मनुष्य इन्द्रिय सुखों में आसक्त हो गया होता है और उसी में प्रवृत्त रहता है।

द्वेष – विषयासक्त मनुष्य जब कष्ट को प्राप्त होता है तब उनके कारणों के प्रति वह क्रोध करता है। यह क्रोध ही द्वेष है जिसके कारण जैसे–जैसे वह अनिष्ट करते जाता है वैसे वैसे क्लेशयुक्त होते जाता है।

अभिनिवेश – जब मनुष्य स्वयं के अंतः करण में सोये संस्कारों के कारण क्लेश या भय को प्राप्त होता है तो उसे अभिनिवेश कहते हैं।

अब तक चित्तके पाँच विघ्न, नव विक्षेप वृत्ति और पाँच क्लेश के विषय में संक्षिप्त में लिख चुके हैं। जिनके कारण मानव–मानस स्वस्थ अथवा विकृत होता है।

उपरोक्त चौवीसों प्रभाव चित्तमें किसी एक का स्वतंत्र अथवा कई एक का सम्मिलित प्रभाव पड़ सकता है। किसका प्रभाव कितना प्रत्यक्ष और किसका कितना अप्रत्यक्ष है और कितना न्यून या अधिक है यह सब व्यक्ति के पूर्व व वर्तमान संस्कारों व उसके मानसिक सामर्थ्य के ऊपर तथा वर्तमान देश काल एवं परिस्थिति पर निर्भर करता है।

कुछ प्रतिक्रियायें स्वाभाविक होती हैं। जो मनुष्य के स्वभाव व संस्कार से सम्बन्धित होती हैं। और कुछ प्रतिक्रियायें कृत्रिम होती हैं जो मनुष्य के विषय वासनाओं से सम्बन्धित होती हैं।

वयाधारित विकास

प्रकृतिमें प्रसारण आकुंचन इत्यादि गुण होते हैं जो समय व परिस्थितियों के साथ–साथ उभरते बैठते रहते हैं। प्रकृति से बना शरीर भी इससे प्रभावित होता है। किसी किसी का विकास स्वाभाविक रूप से चलते रहता है और किसी विशेष उम्रमें रुक जाता है और उस शरीर का उससे आगे विकास नहीं हो पाता।

किसी किसी स्त्री को पहले गर्भ धारणा की क्षमता नहीं उभरती है जो बाद में किसी विशेष उम्र होने पर उसके गर्भ की क्षमता उभर आती है। किसी किसी व्यक्ति के हाथपाँव किसी विशेष उम्र होने पर छोटा बडा दूबला-पतला अथवा सूखने लगता है या फूलने-फैलने लगता है। किसी-किसी व्यक्ति की बुद्धि किसी उम्र विशेष पर अपना संतुलन खो बैठती है। और फिर अपने निश्चित समय पर संतुलित हो जाती है, कई बार असंतुलित ही रह जाती है। इसी प्रकार अनेकों कारणों से स्वास्थ्य बनता बिगड़ता रहता है यह सबके प्रकृति के गुण, काल व व्यक्ति के जीवन, स्वभाव, व संस्कार पर आधारित होता है। निश्चित परिणाम के पूर्व यदि किसी ने कुछ उपचार या क्रियाकान्ड किया होता है तो प्रकृत्ति की इस गुणाधारित प्रक्रिया को भी उसी कर्मकान्ड के फलस्वरूप हुआ मान बैठते हैं। एक स्त्री के गर्भ धारण की मानसिक व शारीरिक योग्यता यदि २५ वर्षमें विकसित होती है तो उससे पूर्व जो कुछ भी वह पूजा पाठ जप तप या अन्य उपाचार किये होती है उसी के कारण गर्भधारण हुआ मान लेती है। वास्तव में जो कुछ हुआ वह स्वाभाविक प्रक्रियावश। यह अंध विश्वास ही अविद्या अथवा विपर्यय वृत्ति है।

मनुष्य के अंतःकरण पर जो कुछ भी प्रभाव पड़ता है उसके दो श्रोत हैं। एक है वाह्य श्रोत और दूसरा है अंतरंग श्रोत, बहिरंग श्रोत ज्ञानेन्द्रिय के माध्यम से समुचित समय स्थान व परिस्थितियों में प्राप्त होता है जब कि अंतरंग प्रतिक्रियायें अथवा प्रक्रियायें मनुष्य के अंतःकरण में समय-समय पर उभर आती हैं।

पाँच भूत : पहले कहा जा चुका है कि जीवन चेतन व जड़ का संघात है और उस पर जड़ तथा चेतन दोनों का प्रभाव पड़ता है। जड जगतमें केवल पाँच ही तत्त्व हैं पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश। सारे संसार का निर्माण इन्हीं पाँच तत्त्वों से हुआ है। मनुष्य के शरीरकी रचना भी इन्हीं पाँच तत्त्वों से हुई है। इन्हें पंचभूत भी कहा जाता है। यही पाँच भूत हैं जो समय-समय पर मानव जीवन को प्रभावित करते हैं।

इन पाँच भूतों के पाँच गुण भी हैं और इन पाँच गुणों को ग्रहण करने के लिये जीव को पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ मिली हैं जो निम्न प्रकार हैं।

पदार्थ	गुण	संबंधित इन्द्रीय
(१) पृथ्वी	गंध	घ्राण (नासिका)
(२) जल	रस	रसना (जिह्वा)
(३) वायु	स्पर्श	त्वचा (चर्म)
(४) अग्नि	रूप	चक्षु (आँख)
(५) आकाश	शब्द	श्रोत (कान)

उपरोक्त पाँचों श्रोतों में जीव को जो ज्ञान प्राप्त होता है वह अंतःकरण अथवा सूक्ष्म शरीरमें प्रथम प्राप्त होता है और फिर यथायोग्य उसकी प्रतिक्रिया होती है।

अंतःकरण

अंतःकरण अर्थात् सूक्ष्म शरीर जो समस्त ज्ञान प्राप्ति का केन्द्र है, वह एक ही होते हुए भी निश्चित्त कारणों से उसके चार भेद हैं। मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार।

(१) मन : संकल्प विकल्प शक्ति।

(२) चित्त : स्मरण शक्ति।

(३) बुद्धि : विवेक व निर्णयात्मक शक्ति।

(४) अहंकार : तेज व कर्म गरिमा।

जीव सृष्टि के उक्त पाँच पदार्थों (पंचभूतों) और उनके गुणों को अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अंतःकरण में प्राप्त करता है और उसके कारण प्रतिक्रियायें उठती हैं।

ये प्रतिक्रियायें साधारण तौर पर रोज रोज के जीवन में भी देखी जा सकती हैं।

चार व्यक्ति एक जगह बात-चीत कर रहे हैं। एक व्यक्तिने एक बात कही उसका अन्य तीनों व्यक्ति पर अलग-अलग प्रभाव पड़ा। एकने उसे गल्प माना, दूसरे ने उसे स्वीकार न कर प्रतिवाद किया और तीसरे के ऊपर उसका कुछ असर ही नहीं हुआ। इस घटना में एक व्यक्ति ने एक बात कही, अन्य तीनों ने अपनी श्रोतेन्द्रियाँ द्वारा उन शब्दों को अंतःकरण तक पहुँचायी और बुद्धिने अपना-अपना विवेचन दिया और अहंकार आदि प्रतिक्रिया प्रदान की।

एक व्यक्तिने बीन बजाई, सर्प ने श्रोतेन्द्रिय द्वारा चित्त में ग्रहण किया और प्रतिक्रियात्मक रूपमें सर्पने मस्त हो कर सर ऊँचा कर लिया। संगीत सुनकर व्यक्तिमें करुणा एवं साहस उत्पन्न हो जाता है।

यह सभी प्रतिक्रियायें जीव के अंतःकरण में उसकी परिस्थिति, देश व काल के अनुसार उभरती हैं एवं समाप्त होती रहती हैं।

भिन्न-भिन्न व्यक्ति में भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रबल या प्रचुर प्रतिक्रियायें उठती है। जिसका सम्बन्ध जीव के जन्म जन्मान्तर के संस्कार तथा वर्तमान जीवन के श्रद्धा, विश्वास एवं आदतों के ऊपर निर्भर रहता है।

प्रक्रियायें अथवा प्रतिक्रियायें यद्यपि वर्तमान तथा पूर्व जन्मों के संस्कार, स्मृति तथा विश्वास के समन्वय स्वरूप उठती हैं। तद्यपि उनके उपसने का तात्कालिक

कारण जीव के किसी एक ज्ञानेन्द्रिय द्वारा उसके विषय को ग्रहण करना होता है।

इन्द्रियाँ जब शब्द, रूप, रस, गंध व स्पर्श के माध्यम से अंतःकरण में संवेदन शीलता उत्पन्न करती हैं और फिर यथायोग्य जो प्रतिक्रिया प्रबल या प्रचुर हो उठती है उसे बाह्य श्रोत्रीय प्रक्रिया कहा जाता है, और चित्तमें जब स्त्यान, प्रमाद, संशय, अविरति, दौर्मनस्य, अविद्या आदि वर्णित कारणों से कोई प्रतिक्रिया उठती है तो उसे अंतरंग श्रोत्रीय प्रक्रिया कहा जाता है। ये सभी स्वाभाविक प्रक्रियायें शाश्वत नियमों के अनुकूल उभरती एवं, समाती रहती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ अस्वाभाविक प्रतिक्रियायें हैं जो मानव सर्जित हैं जैसे –

अस्वाभाविक प्रतिक्रिया

मादक पदार्थों से अर्थात् खान, पान व घ्राणादि के कारण जो प्रतिक्रिया उठती है वह अस्वाभाविक है।

प्रतिक्रिया चाहे किसी भी प्रकार की क्यों न हो (स्वाभाविक अंतरंग, बाहिरंग या अस्वाभाविक) वह पहले अंतःकरण में उपसती है और फिर शरीर के माध्यम से बाहर व्यक्त होती है।

प्रक्रियाओंका संकलन

अभी तककी समस्त प्रक्रियाओं को अब निम्न प्रकार दिखाया जा सकता है।

(१) स्वाभाविक प्रक्रिया : (अ) अंतरंग श्रोत : (१) नौ विक्षेप : (१) व्याधि (२) स्त्यान (३) शंसय (४) प्रमाद (५) आलस्य (६) अविरति (७) भ्रान्तिदर्शन (८) अलब्ध भूमिकत्व (९) अनवस्थित्व

(२) पाँच विघ्न : (१) दुःख (२) दौर्मनस्य (३) अंगमेजयत्व (४) श्वास (५) प्रश्वास

(३) पाँच क्लेश : (१) अविद्या (२) अस्मिता (३) राग (४) द्वेष (५) अमनिवेश

(४) पंचवृत्तियाँ : (१) प्रमाणवृत्ति (२) विपर्यय वृत्ति (३) विकल्पवृत्ति (४) निद्रावृत्ति (५) स्मृतिवृत्ति

(ब) बहिरंग श्रोतों से: शब्द, रूप, रस, गन्ध, व स्पर्श से

(२) अस्वाभाविक प्रक्रिया : मादक अथवा ज्ञानप्रद वस्तु के खान पान से

अंगमेजयत्व

विविध स्थानों एवं अवसरों पर लोगों को जों हाथ पाँव धुनते अथवा अभुआते देखा जाता है। वह वास्तवमें अंगमेजयत्व नामक विघ्न ही होता है। जो एक अथवा अनेक कारणों से चित्तमें उभरी प्रतिक्रिया स्वरुप होती है।

महर्षि पातंजलिजीने अंगमेजयत्व को योग में पड़नेवाला एक विघ्न मात्र कहकर छोड़ दिया । एक ब्रह्मर्षि के लिये ऐसा करना स्वाभाविक ही था। कोई भी योगी आत्मोन्नति के अतिरिक्त दूसरा कुछ सोच नहीं सकता।

सन्यासियों ने सर्वदा यही कहा है कि असत्य, भ्रष्टाचार तथा व्यभिचार से अवनति होती है अतः ये त्याज्य हैं। परन्तु भ्रष्टाचार का सविस्तार विवरण नहीं दिया, और ना ही ऐसा सम्भव है। क्योंकि सदाचारी को भ्रष्टाचार अनुभव नहीं होता।

ऋषिवर

परम पूज्य पातञ्जलिजीने 'अंगमेजयत्व' का बीजरूप ज्ञान देकर संसार पर वड़ा उपकार किया है, मनुष्यों को उससे दिशाबोध प्राप्त हुआ है।

अब मनुष्य का मन किन्हीं कारणों से उन्मादित हो जाय और वह तब निरर्थक, अप्रासंगिक एवं उग्र हो कर अपने शरीर को या शरीरके किसी एक भाग विशेष को भटकने पटकने लगे अथवा अभुआने लगे तो उसे 'अंगमेजयत्व' नामक विघ्न समझना चाहिये।

'अंगमेजयत्व'का जब साधारण अथवा स्वाभाविक प्रभाव वयाधारित अथवा रुग्णावस्थामें पड़ता है तब उसका कोई महत्त्व नहीं होता परन्तु जब वह उग्र होकर व्यक्ति के चित्त पर गहरा प्रभाव डालता है तब व्यक्ति उग्र हो उठता है तब अभुआने लगता है।

किसी किसी व्यक्ति को पागलपन का दौरा पड़ता है। वह साधारण बात चीत करते करते अचानक बहकी बहकी सी बातें करने लगता है। थोडी ही देर में फिर साधारण हो जाता है। कुछ व्यक्ति स्थाई रूप से पागल हो जाते हैं और नाना प्रकार के पागलपन करते हैं।

यह दुर्दशा अंतःकरण में व्यग्रता, उग्रता अथवा उन्माद के कारण होती है। चित्त में से इन्हें यदि दूर कर दिया जाय तो वह व्यक्ति साधारण दशा को प्राप्त हो जाता है।

स्वाभाविक अंगमेजयत्व उस विघ्नको कहते हैं जो बिना उन्माद या व्यग्रता

के हो। जब किसी व्यक्ति को अति ठंड लग जाय या मनुष्य अति वृद्ध हो जाय तो उसके कारण भी उसका शरीर काँपने लगता है। अति शोक, अति भय, उत्साह आदि में भी शरीर में कंपन आ जाता है। यह सब स्वाभाविक अंगमेजयत्व है।

अस्वाभाविक अंगमेजयत्व शरीर के उस झटपटाहट को कहते हैं जो मन के उन्मादित हो जाने के कारण हो जाता है। मन उन्मादित, व्यग्र व उग्र हो जाना जीवनकी अस्वाभाविक तथा असाधारण अवस्था है।

अंगमेजयत्व का अंतरश्रोत

मनुष्य के अन्तरमन में कईबार किसी किसी को बारम्बार ऐसी भावनायें उठ पड़ती हैं जिससे कि अच्छा भला व्यक्ति उग्र हो जाता है। और उसकी व्यग्रता इतनी उग्र हो जाती है कि वह असाधारण (Abnormal) हो जाता है। उसका मन उन्मादित हो उठता है और वह अप्रासंगिक (IRRELEVENT) व्यवहार करने लगता है। मनुष्य की इस मानसिक व्यग्रता को लोग अज्ञानवश भूतप्रेत, चुडैल आदि कहने लगते हैं।

भाषा विज्ञान में अतिशयोक्ति, अलंकार व उपमा आदि की व्यवस्था है। जैसे व्यक्ति विशेष के लिये, पापी, मूर्ख, दरिंदा, दैत्य जानवर, गदहा, राक्षस आदि शब्दोंका प्रयोग सम्भव है। भूतप्रेत आदि विशेषण का प्रयोग होते होते ये शब्द जनमानसमें अत्याधिक प्रचलित हो गये हो। भूत व प्रेत शब्द का प्रयोग तो आया ही है किन्तु उन शब्दों के अर्थ का अनर्थ हो गया।

भूत

(१) भूत का अर्थ है बीता हुआ काल। (२) मृत्यु के बाद शरीर को भस्म करने के पश्चात् उसे भूत कहा गया है। जैसा कि महर्षि दयानंद सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में लिखा है। (३) भूत जगत् के जड़ पदार्थों को भी कहा गया है। पाँच प्रकार के भूत होते है। अग्नि, जल, बायु, पृथ्वी और आकाश। जैसा कि योगदर्शन के विभूति पादका ४४वां सूत्र है **(स्थूल स्वरूप सूक्ष्मान्वयार्थवत्त्व संयमाद् भूत जयः। योग ३/४४,)**

प्रेत : सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में महर्षि दयानन्द ने स्पष्ट लिखा है कि भूतशरीर (लाश) को प्रेत कहा जाता है। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में पुनर्जन्म के विषयमें लिखा है कि मरकर पुनर्जन्म को प्रेत्याभाव कहते हैं।

भूत व प्रेत दोनों शब्द मृत्यु व मृत शरीर सम्बन्धि भाव व्यक्त करते हैं। अज्ञानतावश लोग इसे कोई शक्ति मानने लग गये।

सभी – अंधश्रद्धालु एवं अंध विश्वासी भूतप्रेत को जीव की मृत्यु बाद प्राप्त एक अवस्था मानते हैं। इस तरह से समय के साथ साथ ज्ञान घटता गया और अज्ञान बढ़ता गया और अर्थ का अनर्थ होता गया।

अविद्या एवं अंधकार के युग में मनुष्य संशय, भ्रान्तिदर्शन, विपर्यय, अभिनिवेश दौर्मनस्य, अविद्या, दुःख आदि व्याधिमें फँसता गया।

अंगमेजयत्त्व (अंतरंग प्रक्रिया)

अब मनुष्य के अंतःकरण में स्वतः भाव उठकर जीवनको जिस तरह प्रभावित करतें हैं उस पर विचार करते हैं।

(१) व्याधि : यह एक प्रकारका चित्त विक्षेप है। जो मनुष्य के शरीर में जाने या अनजाने रोगों के कारण उत्पन्न होता है।

प्रथम विचार : एक व्यक्ति है जिसका रक्तचाप किन्हीं कारणों से कम हो गया। उस व्यक्ति को कभी–कभी चक्कर आ जाता है। चलते–चलते वह अचानक चकरा जाता है वह गाँव का रहने वाला अनपढ़ है एवं भूतप्रेत, जादूटोना में विश्वास करता है, शामके समय जंगल से गुजरते समय उसे अचानक एक क्षण के लिये चक्कर आ गया। उसके मन में संस्कारवश शंका हो गई कि यह किसी भूतप्रेत का हमला है। वह बस अत्यंत भयभीत हो गया। भयका उसके हृदय पर बडा गहरा झटका लगा। लड़खड़ाते बड़बड़ाकर किसी तरह वह घर आ पहुँचा। परन्तु उसकी मानसिक स्थिति खराब हो गई थी। और वह हताश व भयभीत अवस्था में केवल यही कहता था कि भूतने उसे चक्कर देकर पटक दिया–१ अब गाँव के अज्ञानी एवं अंधविश्वासी लोग इकट्ठे हो गये और तरह तरह के भ्रामक विचार करने लगे। नाना प्रकार के धूप, दीप, पूजापा होने लगा। दो चार दिन में वह स्वस्थ हो गया।

वास्तवमें यह था रक्तचाप का रोग जिसे अज्ञानतावश भूतप्रेत समझा गया।

दूसरा विचार (आंतरश्रोत व्याधि) :–

एक बार मैं जौनपुर (उ.प्र.) के सिविल अस्पताल में अपनी माताजी के इलाज के लिये गया था। बात १९६१ की है। मेरी उपस्थिति में कुछ लोग एक स्त्रीको डाक्टर के पास ले आये, वह बहुत उछलकूद कर रही थी। लोग परेशान थे उसके ऊपर भूत सवार हो गया था। डाक्टरने उसे भर्ती कर लिया। एक पलंग पर जबरदस्ती लिटाकर एक इन्जेक्शन लगा दिया, पाँच–सात मिनट में वह सो गई और फिर डोक्टर ने उसे एक बाटल चढ़ा दिया। इसी तरह वह दूसरे दिन तक निंद में सोती रही कभी–कभी जाग भी जाती थी तो शान्त रहती थी। दूसरे दिन उसे छोड़ दिया और शान्ति के साथ घर चली गई।

तीसरा विचार (अंतरंगश्रोत व्याधि) –

एक लड़की है लगभग २५ वर्षकी। उसका विवाह अभी नहीं हुआ था। परिवार मांसाहारी है। कन्या सम्पूर्णतः यौवन को प्राप्त हो चुकी है। परिवार संकुचित एवं अविकसित विचारधारा का है। लड़की पर बड़ा प्रतिबंध रखते हैं। उसे गाँव की अन्य कन्याओं के साथ मिलने नहीं देते। लड़की अपनी यौवन की अतृप्ति के कारण त्रस्त है। खुले वातावरणमें न रहने से उसके मनबहलाव का कोई उपाय नहीं है। वह घर की दीवारी में अपनी तृष्णा तथा मनोवेदना को छिपाये अंदर ही अंदर तड़फडाती निःसहाय पड़ी रहती है। इस मनोवेदना के कारण उसका एक दिन मुँह बंद हो गया, दांत उपर नीचे के आपस में जाम हो गये। माँ बाप को कुछ समझ में नहीं आया। पन्डे, पूजारी आदि को बुलाया। किसी ने भूत कहा, किसी ने जादू टोना बताया, किसीने ग्रह आदि बताये, थोडी देर में वह अपने आप स्वस्थ हो गयी किन्तु चर्चा का विषय बनी रही। उसे अब अक्सर ऐसा होने लगा, माँ बापने बला टालनेके अभिप्राय से उसकी शादी कर दी। शादी के बाद उसका यौवन तृप्त हो गया, उसके सभी ग्रह व भूत प्रेत भाग गये उसका स्वास्थ्य ठीक हो गया और सौंदर्य निखर पड़ा। ससुराल वाले भी खुश हो गये।

इस कन्या के अतृप्त यौवन के कारण उसे वास्तवमें उन्मादका (हिस्टीरिया)का दौरा आ जाता था और लोग उसकी वेदना नहीं समझ पाते थे। मांसाहार के कारण उसकी वासना और उग्र हो जाती थी। और घर के अंदर ही अंदर उसके विचार विकसित न होकर केवल अपने ही इर्द गिर्द मंडराते एवं घुटते रहते थे अतः हिस्टीरीया तो होना ही था।

चौथा विचार (अंतरंग श्रोत–व्याधि) :

एक आठ दस वर्ष का बालक है उसके हाथ पाँव कभी–खिंचने लगते हैं, आँखे–खुली रह जाती हैं थोड़ी देर में वह स्वस्थ हो जाता है। यह भी एक रोग हैं परन्तु अज्ञानवश लोग इसे भी कई बार भूतप्रेत का प्रकोप मानते है।

(२) अंतर प्रक्रिया स्त्यान (अंतर श्रोत)

(२) स्त्यान अत्यन्त निर्बल मानव अंध श्रद्धा अंधविश्वास से ग्रस्त व्यक्ति को स्त्याम नामक चित्त विक्षेप का प्रकोप होता है।

(१) प्रथम विचार – जब मनुष्य जन्म जन्मांतर से मानसिक अवनति के क्रम में होता है और पूर्व कई जन्मों से अवनति को प्राप्त होता चला आ रहा होता

है तब वर्तमान जीवन में जरा सी भी मानसिक ठेस, अपमान अथवा डाँट फटकार से वह अत्यंत हताश, निराश व उदास एवं दुःखी हो जाता है। उसका साधारण व्यवहार अचानक बदल जाता है वह सूस्त, हतप्रभ और स्तब्ध रह जाता है। कई बार वह रोने भी लगता है।

ऐसा जब प्रायः देखा जाता है लोगबाग उस पर कोई अज्ञात शक्ति का प्रकोप मान बैठते हैं।

अंतरंग प्रक्रिया दूसरा विचार – (आंतर श्रोत स्त्यान)

एक व्यक्ति है – अत्यंत निर्बल मन का है, शारीरिक दुर्बलता भी है। डरपोकपना, झेंपपना उसकी जन्मजात कमजोरी है वह कहीं साधारण सी बात चीत करता रहता है किसी एक ने उसे डाँट दिया और अपमान कर दिया, वह दब गया और बुत सा हो गया। मन मारे बैठा रहा। उस अपमान का उसके चित्त में आघात लगा वह उसकी दिनचर्या साधारण तौर पर नहीं कर पाया। उसे भोजन भी अच्छा नहीं लगा। बैठे-बैठे कभी-कभी मारे आघात के अपनी निःसहायता के कारण रो पड़ता था। उसके अंतरंग आघात को भी कई बार लोग भूतप्रेत अथवा अज्ञात शक्ति का प्रकोप ही मान बैठते हैं।

(३) संशय (अंतरश्रोत प्रक्रिया)

संशय नामक चित्त विक्षेप मनुष्य के जन्म जन्मान्तर से कमाया हुआ फल है। ऐसे व्यक्तिको किसी पर भी विश्वास नहीं होता। अत्यंत शंकाशील होता है कई बार तो उसे अपने स्वयं की व्यवस्था में भी दुविधा उत्पन्न हो जाती है। ऐसा व्यक्ति अत्यंत अस्थिर मनोबल का होता है।

पहला विचार (अंतरंगश्रोत) संशय : एक व्यक्ति है उसका अत्यन्त क्रोधी स्वभाव है। जरा सी बात पर भी वह मारे क्रोध के आग बबूला हो जाता है। शरीर का भी व निर्बल ही है। वह पढ़ा लिखा भी नहीं है और ना ही माँ बाप से उसे अच्छे संस्कार मिले। गंदी बस्तीमें गंदे कुसंस्कारी लोगों के बीच उसका भरणपोषण हुआ। ऐसा व्यक्ति देखता है कि उसका एक भाई, जिससे उसका झगड़ा है, किसी अन्य व्यक्ति से बातचीत कर रहा है। उस शंकाकुल व्यक्तिको शंका हो गई कि उसका भाई उस व्यक्ति से उसके विरुद्ध कुछ बातचीत कर रहा है और उसकी हानि के लिये तैयारी कर रहा है। इसी शंका के प्रभाव में वह आग बबूला हो गया उसका क्रोध जाग गया। उसका दुर्बल शरीर क्रोध से कांपने लगा। थोड़ी देर में शान्त हो गया। वह उस रात सो नहीं पाया और मानसिक तनाव में वह रह रह कर झुंझलाता रहा। उसकी उस दशा को अज्ञान वश लोग जादूटोना अथवा अज्ञात शक्ति का प्रभाव

मान बैठे।

दूसरा विचार – (आंतरश्रोत संशय) : एक व्यक्ति है। बचपन से उसे उसके माँ–बापने भूत प्रेत, जादूटोना की बातें बतायी है। उसके मन में भूतप्रेत जादूटोना पर अटूट विश्वास हो गया है। एक दिन वह घर लौट रहा था। सायं थोड़ी देर हो गई थी। अंधेरा हो गया था। रास्ते में थोड़ा–झाड़ झांखड़ पड़ता था। वह अकेला था जब वह चल रहा था तब पास में आये किसी पेड़ की डालियाँ थोड़ी अचानक हिलडुल गई और खड़भड़ाहट की आवाज आ गई (संभवतः बंदर या पक्षी आदि के कारण) बस उसके मन में शंका जागृत हो उठी कि हो न हो वह कोई दैत्य है। शंकाकुल विह्वल मनः स्थिति में पेड़ का आकार अथवा चाँदनी में उसकी परछाई रातमें उसे साक्षात् दैत्याकार लगा। वह उस सूम साम जगह में रात के अंधेरे में भयभीत हो उठा उसके हृदय पर भय का बहुत बड़ा धक्का लगा। वह किसी तरह लड़खड़ाते घर तो पहुँच गया परन्तु वह बीमार पड़ गया। उसे ज्वर भी हो गया। वह रह–रह कर घबडाहट में उस झाड़ की आकृति को अपने समझे स्वरुप में आतंकित हो वर्णन करने लगा। इस संशयात्मक आंतरिक प्रक्रिया को भी भूतप्रेत माना गया।

तीसरा विचार (आंतरश्रोत संशय) : एक दुर्बल मन का व्यक्ति है। भूत प्रेत जादूटोना पर उसे अटूट विश्वास है। एक दिन रातको वह सो रहा था। अचानक उसका दरवाजा या खिड़की हवा या किन्हीं कारणों से खट्खट्टा उठे। वह अचानक जाग उठा ओर वहाँ किसी को नहीं पाया। बस उसे शंका हो गई, हो न हो यह कोई भूतप्रेतका काम है। वह डर गया। घर में अकेले होने के कारण उसके मन पर डर का इतना प्रबल प्रभाव पड़ा कि वह बीमार पड़ा गया और मन में उत्पन्न आशंकित बातें बडबड़ा उठता। इस आंतरिक प्रभाव को भी अज्ञान वश भूतप्रेत माना गया।

चौथा विचार – (आंतरश्रोत संशय) : लगभग १९५०–५१ की बात है। अजमेर में (राजस्थान) में रेल इंजन का एक बहुत बड़ा कारखाना है। उसके ब्वइलर शाप (Boiler Shop) में एक ब्वइलर मेकर (बनवारीलाल) काम करता था। वहाँ संडास के पास एक पीपल का पेड़ था। वहाँ लोगों में ऐसी मान्यता थी कि उस पीपल के पेड़ में कोई भूत रहता है उस ब्वइलर मेकर के मन में भूतप्रेत पर विश्वास था। एक दिन जब वह संडास में था तभी कोई मन चले साथीने उसे डराने के लिये उस पीपल के पेड़ की किसी डाली को जोर से हिला दिया। घटना रातकी थी उस ब्वइलर मेकर को इतना डर लग गया कि वह कारखाने में पहुँचा और गिर पड़ा और भूतभूत बड़बड़ाने लगा। उसकी गंभीर दशा देख लोग उसे घर छोड़ आये। उसे तेज ज्वर हो आया। दूसरे दिन ही उसकी मृत्यु हो गई।

वह सत्य घटना मेरे साथी श्री मगनमल शर्मा जो ब्वइलर इन्स्पेक्टर थे और जिनकी उपस्थिति में यह घटना घटी उन्होंने मुझे बताया।

शंसय मानव मन की आंतरिक निर्बलता है। इसका वर्णन नहीं किया जा सकता कि शंका त्रस्त मनुष्य के अंदर कितने प्रकार की कब कहाँ और किन कारणों से उद्धिग्नता उत्पन्न हो जायेगी और वह अस्त व्यस्त अथवा जीर्ण हो जायेगा।

यह बात हर शंकाशील व्यक्ति पर एक सी लागू नहीं पड़ती । कुछ व्यक्ति ऐसे होते है जिनके अन्दर पूर्व जन्मों से ही भूत प्रेत का ड़र बैठा हुआ होता हैं। और वर्तमान जीवन में भी उन्हें बचपन से ही माँ बाप व अन्य लोगों से भूतप्रेत का भय मिला होता है। उनका मनोबल प्रचुर होता है। वे संस्कारहीन, अशिक्षित होते हैं ऐसे स्त्री पुरुषों का आंतरमन शीघ्र ही प्रभावित एवं आतंकित हो उठता है। उनके मनोबल एवं संस्कारों के अनुकूल अथवा अनुपात में ही उनके आंतरमन की प्रक्रियायें न्यून वा प्रबल होती हैं।

(४) प्रमाद (आंतर प्रक्रिया)

जब मनुष्य मिथ्या व्यवहार करता है, चिल्लाता है, डाँटता, फटकारता है, रुदन करता है, छटपटाता है अभुआता है। और झूठा ही किसी शक्ति के प्रभाव को बताता है तो उसे प्रमाद कहा जाता है। जन्म जन्मान्तर से प्रमादी मन का निर्माण हुआ होता है। मनुष्य मिथ्या व पाखण्डके संस्कारों में सराबोर डूबा होता है। और वह कुछ न कुछ प्रपंच करता ही रहता है। साधु, सन्यासियों, पंडा पूजारियों, भुआओंकी एक अच्छी खासी जमात का निर्माण हो चुका है जो नाना प्रकार के प्रपंच रचते रहते हैं।

पहला विचार (आंतरश्रोत प्रमाद) : सन् १९८८ में अहमदाबाद में अमर ज्योति श्याम नामक एक धार्मिक पाखण्डी ने एक तमन्ना नामक भोलीभाली कन्या को अपनी पाखण्ड की जाल में फँसाया । भोलीभाली १८ वर्षीय कन्या ५० वर्षीय पाखण्डी के जाल में फँस गई और कृष्णदर्शन तथा स्वर्ग प्राप्ति की उत्सुकता वश उस साधु के साथ चली गई। फिर उस ठगने कन्या को जगह–जगह घुमाकर आखिर में जयपुर में उसके साथ शादी कर ली।

यह घटना समाज के पढ़े लिखे और ऊँचे समाज की है यही घटना यदि किसी गाँवमें घटी होती तो लोग कहते कि लड़की पर जादूटोना करके वश में कर लिया और फिर उठा ले गया।

दूसरा विचार (आंतरश्रोत प्रमाद) : १९८८ में ही अहमदाबाद में 'दहेगाम' के किसी पौराणिक धर्म गुरुने श्रीमती अध्वर्यु नामक अपनी ही एक कन्या तुल्य भोली–भाली परिणिता शिष्या को अपने मोहजाल में फँसाया और उसके हृदयमें अपने

प्रति श्रद्धा व विश्वास स्थापित कर लिया। फिर एक दिन अनुकूल परिस्थिति पाकर उस पाखण्डी ने उस भोली-भाली स्त्री को बड़े प्रेम व भक्तिभाव से बताया कि वे पुर्वजन्ममें पति पत्नी थे। इस वर्तमान जीवनमें किन्हीं भूल के कारण पत्नी न बन सकी और उसे पर पुरुष के लिये जाना पड़ा है फिर बताया कि अभी भी उसके साथ (पाखण्डी) पतिपत्नी का धर्म पालने से उसकी मुक्ति हो सकती है।

ऐसी ऐसी मुदुल एवं चातुरी भरी बातों से भोलीभाली स्त्री को उसने फँसाया। जिसका भंडा फोड़ बाद में उस सन्नारी ने स्वयं किया।

यह घटना भी यदि किसी गाँव के अनपढ़ लोगों में घटी होती तो लोग उसे भी जादूटोना के प्रभाव में लाकर किया गया बताते।

(५) अविरति (आंतर प्रक्रिया)

एष्णाओं तथा वासनाओं में सर्वथा आसक्त रहने को अविरति कहते हैं।

भिन्न-भिन्न व्यक्ति में भिन्न-भिन्न विषयासक्ति तथा एष्णायें होती हैं। कुछ जीव पिछले कई जन्मों से कामुक तथा एषणायुक्त होते है। और अपने इस पतन मार्ग पर काफी आगे बढे होते हैं। ऐसे व्यक्ति इतने अधिक कामांध या ऐष्णा हो गये होते हैं कि वे अपना विवेक भूल गये होते हैं।

कहावत है "कंजूस को नाक नहीं कामी को साख नहीं" अर्थात् कंजूस व्यक्ति प्रतिष्ठा नहीं देखता और वासना युक्त (कामी) पुरुष बहन-बेटी इत्यादि का रिश्ता नहीं देखता।

जिस तरह गंदे नाले के कीड़े गंदगीमें ही जीवन समझते हैं उसी तरह विषयासक्त विषय वासना में ही जीवन का सुख सार समझता हैं।

विषय वासना कोई पाप या अन्याय नहीं। हर प्रकार का विषय शरीर की भूख होती है जो स्वाभाविक है। युगल सुख परस्पर पूरक है। अभाव अथवा अतृप्ति में दुःख भी होता है, जो जीवन का लक्ष नहीं। तृप्ति एवं पूर्णता की दृष्टि में ही ईश्वर ने नर-नारीका सृजन किया है और उस सुख भोग के लिये आचार संहिता व संस्कार भी दिया है।

परन्तु जब मनुष्य उसके सद्उपयोग के स्थान पर दुरुपयोग करता है। उसका नियंत्रक होने के बदले निमंत्रत हो जाता है तब वह मनुष्यता से गिर जाता है। और अपनी गिरी हुई जिंदगी में वह रूग्ण हो जाता है। आंतर मनकी विकृति के कारण उत्पन्न उसकी रुग्णाता कई बार पहेली बन जाती है और लोग विस्मित रह जाते हैं।

जब व्यक्ति अविरति के साथ–साथ प्रमाद का भी अभ्यस्त होता है तब समस्या, और भी जटिल हो जाती है। कई बार मनुष्य अपनी परिस्थितिवश अपने प्रमाद पर रोग का पर्दा डालता है तो कभी रोग पर प्रमादका।

चित्तपर प्रभाव डालने वाली पाँच वृत्तियां, नव विक्षेपों, पाँच विघ्नों तथा पाँच क्लेशों में से कइयों का एक साथ सम्मिलित प्रभाव या केवल एक का ही प्रभाव पड़ सकता है। कई बार समस्या बड़ी जटिल होती है। अत्यंत निष्णांत व्यक्ति ही हल ढूँढ़ पाता है।

पहला विचार : एक व्यक्तिने किसी स्त्री के साथ व्यभिचार कर लिया और उस कारण किसी गंदे रोग का शिकार हो गया। रोग का प्रभाव अंततोगत्वा उसके मन को भी प्रभावित कर गया और वह चिड़चिड़ा, क्रोधी या उग्र होने लगा। वास्तविकता को छिपाने के लिये वह तथा कईबार उसके परिवार के लोग भी उसे भूतप्रेत का प्रभाव बताते हैं। जब कि मूल कारण होता है "अविरति"

दूसरा विचार – (अंतर श्रोत – अविरति) : कम उम्र में कन्या विधवा हो गई। समाज व परिवार ने उस अबोध अभागिनी को उसके जीवन के सभी स्वाभाविक सुख से वंचित कर दिया। उसके शरीर व मन के विकास के साथ जब उसे स्वाभाविक भूख लगी तब वह निःसहाय हो तड़प उठी। उसके आंतरिक अव्यक्त ऐंठन व तड़पन के कारण वह व्यग्र हो गई उसका चित्त रुग्ण हो गया और वह उन्मादित होने लगी उसे दौरा पड़ने लगा। लोग इस आंतरिक प्रक्रियाको भूत प्रेत मान बैठे।

तीसरा – विकास – (आंतरश्रोत – अविरति – अस्वाभाविक) अफीम, गांजा, चरस, आदि मादक वस्तुओंका सेवन भी वासना ही है। इन मादक वस्तु में फँसा व्यक्ति बहुधा असाधारणावस्था में ही रहता है, जब मादक वस्तु के प्रभाव में रहता है तब लड़खड़ाता अथवा उन्मादित अवस्था में कई बार उग्र हो उठता है, और जब उसे उसकी मादक वस्तु नहीं मिली होती है तब उसके अभाव में वह तड़पता और छटपटाता है। यह भी एक असाधारण अवस्था है कई बार गाँवों में अनपढ़े असभ्यों में इसे भी भूतप्रेत मान लिया जाता है।

वास्तव में भूत हो या प्रेत वह मनुष्य ही सब कुछ होता है। मनुष्य ही इस वसुंधरा के सदुपयोगी होने के कारण देव होता है और उसके दुरुपयोग के कारण दानव या दैत्य। यह सब इसी वर्तमान जीवन की प्रत्यक्ष अवस्था है जिस में मनुष्य कभी दैत्य कभी दानवा तो कभी मानव बनता रहता है।

चौथा विचार – (आंतरश्रोत अविरति) : संतान वियोग या हानि, पतिपत्नी वियोग या हानि तथा प्रेमी–प्रेमिका वियोग या हानि के कारण कईबार मानव मन व्याकुल

हो जाता है। वह अत्यन्त निराश, उदास एवं हतप्रभ हो जाता है। किं कर्तव्यं विमूढ़ः सा बैठा रह जाता है। उसका रहन सहन बदल जाता है नियम – धर्म, रीति–नीति छूट जाते हैं। खान–पान छूट जाता है। वह अत्यंत निर्बल हो जाता है शनैः शनैः नैराश्यता इत्यादि के कारण उसे कम रक्तचाँप (Low Blood Pressure) का रोग हो जाता है। उस कारण उसे कई बार चक्कर आ जाते हैं। दशा और बिगड़ने पर वह अचेत हो गिरने लग जाता है। इस वियोग त्रस्त व्यक्ति पर भी अज्ञानतावश लोग भूत–प्रेत का प्रभाव मान बैठते हैं। यद्यपि वह होती है आंतर क्षेत्रीय अविरति प्रक्रिया।

आलस्य (अंतरंग प्रक्रिया)

जब मनुष्य के सूक्ष्म शरीर का एक अंग अहंकार, निस्तेज हो जाता है, तब उसका उत्साह कर्मपरायणता समाप्त हो जाती हैं। उसका तेज ओज वर्चस्व समाप्त हो गया होता है। उसका शरीर रोगिष्ट हो जाता है। कफ आदि का प्रकोप उस पर रहता है तथा कफजन्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अहंकार की कमी तथा कफ की बहुलता के कारण वह निष्क्रिय हतप्रत तथा रोगिष्ट हो जाता है। शनैः–शनैः उसका शरीर बल व मनोबल बहुत ही कम हो जाता है और वह निरुपयोगी प्राणी जैसा जीवन व्यतीत करता है। कई बार रोग की पीड़ा से त्रस्त हो जाता है। और वह निरुपयोगी प्राणी जैसे जीवन व्यतीत करता मै। कइबार रोगकी पीडासे त्रस्त हो जाता है। अज्ञानता वश खास–कर पिछड़े जनों में मनुष्य इस दशा को भी भूतप्रेत या जादूटोना ही मान लेते हैं।

पहला विचार – (अंतरंग श्रोत – आलस्य) : मान लीजिये एक व्यक्ति है। उसके चित्त में विपर्यय वृत्ति है, संशय तथा प्रमाद नामक विक्षेप है और दौर्मनस्य नामक विघ्न है। अब वह व्यक्ति उक्तचार प्रकार से प्रभावित है। विपर्यय वृत्ति के कारण वह बहुधा गलतफहमी में ही रहता है। संशय – नामक विक्षेप के कारण हर बात में शंका कुशंका होती रहती है। प्रमादी होने के कारण वह मिथ्या वर्णन करता रहता है। दौर्मनस्य नामक विघ्न के कारण वह प्रायःउद्विग्न हो जाया करता है।

कफ जन्य रोगों से ग्रसित उसका शरीर तथा कई प्रकार के मानसिक रोगों में ग्रसित उसका अंतर्मन उसे असाधारण बना देते है। वह स्वयं प्रमाद करता फिरता है कि उसे कोई रोग नहीं उसपर किसी ने टोना मार दिया है, नज़र लगा दी है अथवा मैली विद्या का प्रयोग कर दिया है। नासमझी में लोग उसकी बातों को स्वीकार भी कर लेते हैं।

दूसरा विचार – अंतरंग श्रोत आलस्य : एक व्यक्ति है, आलसी है । उसका शरीर निर्बल एवं रोगिष्ट हो गया है। कफ व खाँसीने विकराल रूप धारण कर लिया है। जब खाँसी का दौरा आता है तो उसका मुँह लाल हो जाता है, आँखें भी लाल

हो कर चढ जाती है। वह तड़फड़ा–तड़फड़ा कर खाँसता रह जाता है, योग्य चिकित्सा के अभाव में उसकी दशा अत्यंत खराब हो जाती है। लोगबाग उसके कष्ट निवारण के लिये पूजा पाठ इत्यादि करने लग जाते हैं। असत्य श्रद्धा के कारण आखिर उसका अंत हो जाता है और लोग इसे कोई ग्रह या दैवी प्रकोप मान बैठते हैं।

तीसरा विचार – (आंतरश्रोत आलस्य) : एक आलस्य ग्रसित व्यक्ति है, साथ–साथ वह स्वाद लोलूप भी है। अपने स्वाद के सामने वह अपने स्वास्थ्य की चिन्ता भी नहीं करता। अतः उसका रोग व निर्बलता बढ़ती गई। कफ़ प्रद वस्तुओं के खाने से उसके शरीर में कफ़ बढ़ता गया उसकी श्वास – नलियाँ बंद होने लगीं और उसका दम घूंटने लगा। अज्ञानी लोगोंने दैवी–प्रकोप, ग्रह जादूटोना मान लिया, अंत में वह अयोग्य चिकित्सा के कारण मर गया।

चौथा विचार (अंतरंग श्रोत आलस्य) : एक आलसी व्यक्ति है। कुछ काम या परिश्रम नहीं करता, कोई व्यायाम नहीं करता है। उसका शरीर भारी व शिथिल हो गया। अब उसके हाथपाँव जकड़ गये, हिलाने डुलानेमें भी तकलीफ होने लगी। पाँव फैले हैं तो मोड़ने में कठिनाई और मुडे हैं तो सीधा होने में कठिनाई। शरीर के सभी जोड़ तकलीफ देने लगे, सबसे वह कहता है कि उसको किसीने कोई जादूटोना कर दिया है या कोई भूत–प्रेत लगा दिया है, वर्ना उसने कोई गलत काम नहीं किया फिर भी ऐसा हो गया। लोग अज्ञान वश उसे भी कोई अज्ञात शक्ति का प्रकोप या जादूटोना मान जाते हैं।

कफ़, पित्त, वात तीन प्रकार के विकार शरीर को रोगिष्ट करने के लिये माने जाते हैं। इन्हीं तीनों प्रपंच से असंख्य रोग असंख्य रूपों में उत्पन्न होते हैं। जैसे जैसे मनुष्य स्वाभाविक जीवन छोड़ता है और प्रकृति से दूर अस्वाभाविक एवं कृत्रिमता को अपनाता है वैसे वैसे शारीरिक तथा मानसिक विकार बहुरूपी प्रपंच रचता है। समस्या इतनी असुलझी एवं असूझी रहती है कि उसके समाधान के लिये कई निष्णातों के संयुक्त प्रयास की आवश्यकता पड़ती है। सबकी चिकित्सा एक ही है 'विज्ञान' जिसे अध्यात्मिक भाषा में वेद कहा जाता है।

(७) भ्रान्ति – दर्शन (आंतर प्रक्रिया)

जब व्यक्ति भ्रममें पड़ जाता है और मिथ्याभाव से प्रभावित रहता है तब उसे भ्रान्तिदर्शन नामक चित्त विक्षेप से प्रभावित माना जाता है।

भूत प्रेत, चुडैल, दैत्य, जादूटोना सब कुछ भ्रम है। जब तक एक व्यक्तिका

चित्त भ्रान्ति दर्शन द्वारा प्राक्षेपित रहेगा तब तक अज्ञानता, अंध विश्वास स्थिर रहेगी तथा पाप पाखण्ड चलता रहेगा।

भ्रम में मनुष्य पेड़ को जानवर, जानवर को मनुष्य, मनुष्य को पेड़ या पशु मान लेता है और अर्थका अनर्थ कर बैठता है।

'भ्रान्ति दर्शन प्रभावित जीव जब अपने भ्राँतियों के साथ पुनर्जन्म लेता है और जन्मजात अंधविश्वासी होता है तब तो वह प्रत्यक्ष सत्य को भी कई बार मानने से इनकार कर लेता है। उसके चित्त में फूट–फूटकर अंधविश्वास, अश्रध्धा तथा अविश्वास भरा पड़ा रहता है। जिससे उसका वर्तमान जीवन अत्यंत निम्न कोटिका एवं अबुद्धि जन्य होता है। वह किसी की बात नहीं मानता है। और अपने विश्वासों को सर्वोपरि मानता है। ऐसा व्यक्ति मूर्ख (Idiot) सनकी अथवा मंदबुद्धि का माना जाता है। कई बार मनुष्य भ्रान्तिदर्शन के साथ–साथ विपर्यय द्वारा भी प्रभावित होता है। दोनों दशामें व्यक्ति भ्रम में पड़ता है कई बार भ्रान्तिदर्शन को विपर्यय व विपर्यय को भ्रान्तिदर्शन समझ लिया जाता है। दोनों का विश्लेषण विवेक पूर्ण करना चाहिये। वास्तव में दोनों ही भ्रम हैं परंतु एक प्रत्यक्ष जड़ वस्तु के माध्यम से उभरता हैं जिसे विषय कहते हैं। और दूसरा अंतरात्मा में वैचारिक स्वरूप में उद्‌भित होता हैं जिसे भ्रान्ति दर्शन कहते हैं। विपर्यय का सम्बन्ध वर्तमान जीवन से अधिक व पूर्वजन्मों से न्यून होता है। जब कि भ्रान्तिदर्शन में पूर्वजन्मों का महत्त्व अधिक और वर्तमान जीवनका प्रचुर होता है।

किसी व्यक्ति ने कहा कि वह जा रहा था, शाम हो गई और रास्ते में बाग मिला। जिसमें आम व पीपल इत्यादि के पेड़ बहुत दूर तक थे। उन पेड़ों के बीच में से दूर पर दीपक सा टिमटिमा रहा था। परन्तु बहुत दूर तक अंधेरे में चलने पर भी उस दीपक तक पहुँच नहीं पाया और आखिर में दीपक भी खो गया।

सुनने वाला भ्रान्ति दर्शन प्रभावित था। उसने सोच लिया कि वास्तवमें वह दीपक नहीं था वहाँ घने बाग में कोई प्रेतात्मा ने अग्नि जलाई थी और बाद में बुझा दिया जिसे यह व्यक्ति दीप मान रहा है। जब कि दृष्य को देखने वाला व्यक्ति कहता एवं मानता है कि वहाँ कोई चोर बत्ती जलाकर कुछ अपना काम कर रहा था और किसी के आने की आहट पा कर दीपक बुझा दिया, यह देखने वाला व्यक्ति विपर्यय वृत्ति का था।

दोनों व्यक्ति भ्रम में थे। वास्तव में उस घने बाग में आदिवासी (वनवासी) की झोंपड़ी थी। वहाँ ये दीपक जलाये थे, देखने वाला चोर समझा घबडाया और रास्ता भूल गया वह भटक्कर दूर कहीं ओर जगह पहुँच गया, सुनने वाला व्यक्ति संस्कारवत्

अंधविश्वास वश भूत प्रेत का लुक्क मान गया। भ्रान्ति दर्शन व विपर्यय में यही भिन्नता है।

पहला विचार – (अंतरंग श्रोत भ्रान्ति दर्शन) : एक व्यक्ति है। जन्म जन्मान्तर से उसमें भूत प्रेत के प्रति संस्कार जमा है। वर्तमान जीवन में भी उसे भूतप्रेत का डर परिवार व समाज से मिला है। वह निर्बल मनोबल का व्यक्ति है। उसके गाँव में एक वरगद् के पेड़ है। किसीने उसे कह दिया कि उस बरगद के पेड़ में एक पिशाच रहता है। एक दिन वह व्यक्ति उधर से जा रहा था। गर्मीका दिन, दोपहर की प्रचंड गर्मी में वहाँ निर्जन वातावरण था। उस व्यक्ति के कान में कुछ हरहराने की आवाज आई, हवा के झोंकों से बडे बडे पेड़ो के पास ऐसा होता ही है परन्तु उस व्यक्ति को विश्वास हो गया कि यह तो पिशाच का ही काम था वह डर गया। उसके हृदय पर डर का बहुत बड़ा आघात लगा। वह बीमार हो गया और कई दिन तक भूतप्रेत बड़बंड़ाता रहा। शनेःशनेः ठीक हो गया। किन्तु भूतप्रेतका डर मनमें और बन गया।

दूसरा–विचार (अंतरंग श्रोत–भ्रान्तिदर्शन) : एक व्यक्ति है, शाम के समय गाँव में दो चार व्यक्तिओं के साथ गपसप लगा रहा था। कहीं किसी पेड़ पर एक उल्लू (ररू इया) पंछी बैठा सुन रहा था। इस पक्षी में पोपट जैसे बात दुहराने की शक्ति होती है। उस पक्षीने उस व्यक्तिका नाम दो तीन बार दुहरा दिया जिसे वहाँ बैठे सभी लोगोंने सुना। कहावत है कि– जब रसुइया चिरई किसी व्यक्ति का नाम कह दे तो वह व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। इसी विश्वासमें यह व्यक्ति अत्यंत भयभीत हो गया और उसे विश्वास हो गया कि अब वह कुछ दिनों में मर जायेगा। उसे बहुत बड़ा आघात लगा। उसका मन व्यग्र हो गया और वह बीमार हो गया। और कभी–कभी कुछ का कुछ बड़बड़ाने लगता था। लोगबाग उसे होस्पिटल ले गये और वह ठीक हो गया। परन्तु उस के मन में डर बहुत दिनों तक लगा रहा, इसे भी अज्ञानवश लोग भूत–प्रेत का ही प्रभाव मानतें हैं।

तीसरा विचार– (अंतर श्रोत भ्रान्ति दर्शन) : एक व्यक्ति है। उसने सुना कि एक कुत्ता रो रहा है। उसे डर लग गया कि अब उसका या उसके परिवार का पतन होने वाला है। बस इसी आघात में उसे हृदय का दौरा पड़ा। बड़ी कठिनाई से हजारों रुपये खर्च करने के बाद वह स्वस्थ हो गया।

चौथा विचार (अंतर श्रोत भ्रान्तिदर्शन) : एक स्त्री किसी परीक्षा में बैठने जा रही थी, अचानक उसकी दाहिनी आँख फड़कने लगी बस उसे विश्वास हो गया

कि वह नापास हो जायेगी, उसे आघात लगा, घबड़ा गई और व्यग्र मन से वह कुछ लिख न पाई और फेल हो गयी।

अंतर मन को आघात जब लगता है तो व्यक्ति टूट जाता है उसका व्यक्तित्व समाप्त हो जाता है और वह बहुत दुःखी हो जाता है। अंधश्रद्धा में लोगबाग इसे भूतप्रेत, जादू टोना मान लेते हैं।

(८) अलब्ध भूमिकत्व (अंतर प्रक्रिया) : चित्त का यह विक्षेप जीवात्मा को आत्मिक सिद्धि में निराश करता है, समाधिस्थ अवस्था में चित्त को सम्पूर्णतः निर्विषयी रखना तथा ब्रह्मलक्षी रखना बहुत कठिन तपस्या है। उसके भी कई स्तर हैं। वेदरत्न आचार्य उदयवीर शास्त्रीजीने महर्षि पातंग्जलि कृत योगदर्शन के भाष्य में अत्यंत विद्वतापूर्ण ढंग से समाधि के चार स्तर का वर्णन क्रिया है। उन्होंने समाधि के मघुमती, मधुप्रतिका, प्रज्ञाज्योति तथा अतिक्रान्ति भावनीय नामक चार योगभूमि बताया है। योग के इन क्रम बद्ध स्तरों तक न पहुँचने के कारण जीव निराश एवं निरुत्साही हो जाता है। चित्त के इस हतोत्साह को अलब्ध भूमिकत्व कहते हैं इस विक्षेप से केवल योग सिद्धि में ही बाधा पड़ती है अन्यथा इसका और कोई कुप्रभाव नहीं।

(९) अनवस्थित (अंतर प्रक्रिया) : चित्त समाधिस्थ अवस्था में किसी भी स्तर पर जब निरुद्धावस्था को नहीं रख पाता और असंप्रज्ञात समाधि नहीं लगा पाता तब उसमें वितर्क उत्पन्न होता है और उसका विश्वास डगमगा जाता है। ऐसी अवस्था को अनवस्थित्व कहते हैं यह विक्षेप भी मात्र योग में ही बाधा डालता है अन्यथा नहीं।

(१०) दुःख (अंतर प्रक्रिया)

मनुष्य को जब उसके स्वजीव व संस्कारों के विपरीत परिस्थिति को भोगना पड़ता है तब वह दुःखी हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव व संस्कार अलग–अलग प्रकार का होता है और उसी के अनुकूल जीवन यापन की उसकी इच्छा रहती है। परन्तु जब उसे अपना जीवन स्वयं की इच्छाओं के विपरीत बीताना पड़ता है तब वह दुःखी हो जाता है।

दुःख तीन प्रकार के होते हैं : (१) आध्यात्मिक (२) भातिभौतिक (३) आधिदैविक.

(१) आध्यात्मिक दुःख :– आध्यात्मिक दुःख के दो भाग हैं। जब शरीर में घाव, फोड़ा, फुन्सी, ज्वर, चेचक आदि रोग हो जाता है तब उसे शारीरिक दुःख कहते हैं। और जब व्यक्ति अपने व्यसन या अवगुण के कारण दुखी हो, जैसे क्रोध, ईर्षा, द्वेष आदि से तो उसे मानसिक दुःख कहते हैं।

पहला विचार – (अंतर श्रोत– दुःख) : किसी व्यभिचारी व्यक्ति ने रोगिष्ट स्त्री के साथ व्यभिचार कर लिया। उसे गर्मी नामक गुप्त रोग हो गया। उसकी उसने चिकित्सा कर ली। रोग दूर अवश्य हो गया परन्तु जड़ से समाप्त नहीं हुआ– कुछ वर्षों के बाद वह शरीर के अन्दर पुनः जागृत हुआ। रोगी तथा वैद्य समझे न समझे जब तक रोगी को पक्षाघात मार गया वह अर्धांग हो गया। जीवन नर्कमय हो गया। कुछ दिनों के बाद मानसिक स्थिरता आयी परन्तु शारीरिक अपंगता स्थायी हो गई। अस्वस्थता के दिनों में तथा बाद में भी लोग इसे व्याधि अथवा दैवी प्रकोप मान गये। कई बार मनुष्य के मस्तिष्क पर भी पक्षाघात का प्रभाव पड़ता है और उसके बोलने या सुनने अथवा सूंघने की शक्ति समाप्त हो जाती है। अज्ञानी अंधविश्वासी इसे व्याधि या दानवी प्रकोप मान लेते हैं। यदि वह रोगी व्यक्ति प्रबदी हुआ तब तो वह स्वयं ही भूतप्रेत की बात फैला देता है कि कभी भी उसके व्यभिचार की बात, जो रोग का मूल कारण था, ऊपर न आवें।

दूसरा विचार– (अंतरंगस्रोत दुःख) : एक व्यक्ति है, अत्यंत क्रोधी तथा उसका रक्तचाप ऊँचा हैं साथ ही ईर्ष्यालु स्वभाव का हैं। अज्ञान व अंधश्रद्धा से भरा उसका जीवन है। वह दूसरों के विकास व प्रगति की ईर्ष्या करता है। छोटी–छोटी बातों पर भी क्रोध से आग बबूला हो जाता है। उसने अपने बच्चों को भी विद्यालय नहीं भेजा। उसके भाई के बच्चे नियमित पाठशाला जाते हैं और प्रगति करते हैं। इस बात की भी उसे ईर्ष्या है। वह रात दिन वही सोचता रहता है कि किस तरह अपने भाई का अनिष्ट करें। किन्तु कुछ कर नहीं पाता था, मन की घुटन व क्रोध के कारण वह क्षीण होता गया। जैसा जैसा वह दुर्बल होता गया उसका क्रोध उस पर हावी होता गया उसमें उसके स्वयं के क्रोधाग्नि को सहन करने की शक्ति न रही और वह जर जर हो गया। पहले तो क्रोध में ही वह काँपता था बाद में तो उसका शरीर काँपने ही लगा। उसका कम्पन भी काफी प्रबल रहा। इस कम्पन को भी अंधविश्वासी अज्ञानी दैवी प्रकोप मानते हैं।

ग्रामीण विस्तार में खास कर उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, इत्यादि में इस प्रकार की अंधश्रद्धा बहुत है। खाँसी के लिए खोखनी माता, कंपन के लिये "कंपकंपनी माता," चेचक के लिये भवानी माँ का पूजन करते हैं। तथा "निकार" (रास्ते पर या अमुक मान्य स्थानों पर नारियेल सिन्दूर आदिका रखना) करते हैं।

तीसरा विचार (अंतरगंश्रोत दुःख) : एक शंकाकुल व्यक्ति है, चरित्र का हीन है। उसे किसी कारण वश अपनी पत्नि पर शंका हो गई। उसने क्रोध के प्रभाव

में अपनी पत्नि को चाकू मार कर हत्या कर दी। बाद में पछताया और आघातवश अस्थिर मानस का हो गया। अर्ध पागलावस्था में अब वह अपनी पत्निको ढूँढता फिरता है। लोग उस पर भूत सवार होने की बात मान गये।

चौथा विचार (अंतर श्रोत दुःख) : एक पापाचारी व्यक्ति है। डाका, खून व अपहरण आदि उसकी जीवन चर्या थी। पुलिस उसके पीछे पड़ गई। उसे हर समय पकड़े जाने का भय हो गया। लम्बे समय के भय के कारण उसमें हताशा होने का रोग हो गया। बाद में उसका रक्तचाँप कम हो गया उसे कभी-कभी चक्कर आने लगा। एक बार जंगल में उसे मूर्छित पाया गया। वास्तव में यह रक्तचाँप की कमी थी परन्तु लोग इसे भूतप्रेत का प्रकोप मान बैठे।

इस प्रकार मानसिक व शारीरिक वेदना मनुष्य को होती रहती है, विद्वान लोग उसे रोग मानकर चिकित्सा करते हैं और सुखी रहते हैं परंतु अज्ञानी लोग उसे भूतप्रेत, जादूटोना आदि मान कर नाना प्रकार के पूजापाठ तथा कर्मकान्ड करते हैं और दुःखी होते हैं।

(२) आधिभौतिक दुःख : इस संसार के वर्तमान जीवन में जब एक जीव दूसरे जीव के कारण दुःखी होता है तो उसे आधिभौतिक दुःख माना जाता है।

बिच्छूका डंक मारना, मच्छर का काटना कुत्ते आदिका काटना, सब भौतिक दुःख हैं।

पहला विचार (दुःख) : एक व्यक्ति है उसे मच्छर ने काट लिया उसे मेलेरिया हो गया। उसका ज्वर इतना तीव्र हो गया कि उसकी चेतनाशक्ति विकृत हो गई और वह स्वप्निल दशा में देखे-सुने, समझे-असमझे बातों को बड़बड़ाने लगा। लोगवाग इसे भूतप्रेत का प्रकोप मान गये। यह सब बातें अज्ञानियों में चिकित्सा के अभाव में बहुधा होती हैं।

दूसरा विचार (दुःख) : एक व्यक्ति है उसके घर पर चोर आ गये और उसे तीक्ष्ण हथियार से घायल कर दिया और मालसामान चुरा कर भाग गये। घायल व्यक्ति की चिकित्सा में लापरवाही के कारण उसे टिटनीस हो गया और वह मर गया। अज्ञानी जन इसे भी भूतप्रेत का प्रकोप मान बैठते हैं। जब कि वह था टिटनिस।

(३) आधिदैविक दुःख : जब प्राकृतिक कारणों से मनुष्य दुःखी होता है तो उसे दैविक दुःख माना जाता है। अति वर्षा, बिजली का गिरना, आँधी-तूफान, भूकम्प आदि इस कोटि में आते हैं।

पहला विचार (दुःख) : इस प्रकार का दुःख प्रायः सामूहिक दुःख होता है। मान लीजिये दुष्काल पड़ गया, वर्षा नहीं हुई। फसल न ही हुई किसानों के पास अन्न नहीं रहा। लोग भूख से मरने लगे। आधिदैविक दुःख का भूतप्रेत से सम्बन्ध नहीं जोड़ा जाता है। फिर भी कुछ दैवी प्रकोप के निवारण के लिये पूजापाठ व कर्मकांड, पन्डे पूजारियों ने फैला रखा हैं।

एक ऐसी किंवदन्ति है कि जब सूखा-अकाल पड़ता है तब राजा व रानी खेत में हल यदि चलावें तो वर्षा होती है। कहीं कहीं शिवलिंग को दूध या जल में डूबोते हैं।

(११) दौर्मनस्य- (अंतर प्रक्रिया) : अंतः करण में जब उद्विग्नता, खिन्नता या क्षोभ उत्पन्न होता है तो उसे "दौर्मनस्य" कहते है।

एक निर्बल मन व निर्बल शरीर का व्यक्ति सत्य पथ पर होते हुए भी जब हार या निष्फल हो जाता है तब ऐसी निःसहाय अवस्था में उसे बड़ा क्षोभ होता हैं। ऐसे लोग कई बार चिड़चिड़े व उद्विग्न मन के हो जाते हैं। इसके साथ-साथ कभी-कभी अन्य क्लेश भी सहचारी हो जाते मै। इस तरह क्लेश एवं क्षोभ से अंदर ही अंदर टूटता व्यक्ति कभी-कभी अव्यवहारिक तथा अप्रासंगिक सा व्यवहार करने लगता है जो ना समझी में भूतप्रेत जादू टोना इत्यादि मान लिया जाता है, विशेषतः ग्रामीण विस्तार में ऐसी बातें होती रहती हैं।

प्रथम विचार- (आंतरिक श्रोत- दौर्मनस्य) : ग्रामीण विस्तार का एक अनपढ़ परिवार है। पूरा परिवार भूतप्रेत के ऊपर अंध विश्वास रखता है। उसमें एक दुर्बल व्यक्ति है जो बड़ा क्रोधी स्वभाव का है। किन्तु वह निर्बलता एवं विवशता वश कुछ कर नहीं पाता है। जब कभी उसकी इच्छा पूरी नहीं होती तब वह अंदर ही अंदर अपने क्रोध को समेटे कसमसा के रह जाता है। कई बार वह गुपसुप रहता है। फिर भी गुस्से में उसका चेहरा तमतमाता रहता है और उसका शरीर कंपन करता रहता है। कभी-कभी वह अव्यवहारिक वर्तन कर बैठता है। उसकी इस दशा को भी उसके परिवार वाले किसी दानवी शक्ति का प्रकोप मान बैठते हैं। कहते हैं किसीने कुछ कर दिया है।

दूसरा विचार- (अंतरश्रोत- दौर्मनस्य) :- गाँव की एक स्त्री है। संयुक्त परिवार में रहती है। उसका पति रूग्ण है। उसे पक्षाघात हो गया है। वह लम्बे समय से बिस्तर पकड़ा हुआ है। उसकी पत्नी को दाम्पत्य सुख नहीं मिला। घर के दूसरे लोग उसे निरादर करते हैं, कष्ट देते हैं। एक तरफ प्रबल यौवन की भूख दूसरी तरफ

दुर्व्यवहारों की मानसिक प्रताड़ना। ऐसी मानसिक परिस्थिति में वह कई बार बरस पड़ती थी। छोटे बड़े सभी को खरा खोटा सुना देती थी। अत्यंत उखड़ जाती थी और उत्तेजित हो जाती थी। उत्तेजित दशा में विस्मय पूर्ण बातें व व्यवहार करती थी। फिर अपनी विवशता पर वह रो पड़ती थी। एक दो दिन भोजन तक नहीं करती थी और बिमार सी अधमरी पड़ी रह जाती थी। उसके इस व्यवहार को भी लोग भूतप्रेत जादू टोना मान लेते हैं।

तीसरा विचार– (अंतरश्रोत– दौर्मन्स्य) :– एक व्यक्ति है– शरीर से अत्यंत दुर्बल, एवं मन से भी दुर्बल। क्रोध के अवगुण से सर्वथा भरा हुआ। उसे किसी का हँसी मज़ाक यहाँ तक कि अबोध बच्चों की क्रीड़ा भी पसंद नहीं। वह तनिक सी बात में एकदम क्रोधित हो जाता है। अड़ोस पड़ोस के बच्चों को उसकी कमजोरी का पता चल गया। अब नटखट बच्चें जहाँ कहीं भी उसे देखते थे वहीं उसे चिड़वानी के लिए अनेक हरकतें करते थे। कोई कोई बच्चे तो दूर से छिपकर पत्थर आदि भी मार लेते थे। परिस्थिति ऐसी हो गई कि अब सभी बच्चे उसे कहीं बाहर देखकर उसके आगे पीछे घेराव सा करके उसे चिड़ाकर भाग जाने लगे, जैसे–जैसे वह बच्चों पर गुस्सा करता गया, डाँटता फटकारता गया, बच्चें और भी तूफानी होते गये।

यह सब अब बच्चों का नित्य मनोरंजन हो गया। वह व्यकित रोज रोज के क्रोधाग्नि में जल जल कर अपनी मानसिक संतुलनता खो बैठा और अब चलते फिरते अनायास ही – बडबड़ाता फिरता। गालियाँ भी बकता फिरता। कई बार अकेले में ही किसी को डाँटने लगता। उसकी इस दशा को भी लोग भूतप्रेत जादू टोना मान लेते हैं। कहते हैं किसीने कुछ कर दिया है।

चौथा विचार– (आंतरश्रोत– दौर्मनस्य) :– अत्यंत क्रोध, अति उत्साह अति उद्विग्नता के कारण कई बार मनुष्य का मन उन्मादित हो जाता है और जब तक उन्माद का प्रभाव मन पर रहता है वह अव्यवहारिक वर्ताव करता है। इस अव्यवहारिकताको अंधविश्वासी भूत प्रेत ही मान बैठते हैं।

भेगभेजयत्व (आंतर प्रक्रिया)

श्वास प्रश्वास (आंतर प्रकिया) :– सृष्टि में पाँच भूत काम करते हैं, उसमें एक भूत है वायु। यही प्राण है जीवात्मा को शरीर में स्थिर रखने के लिये श्वास–प्रश्वास प्रक्रिया द्वारा प्राण महत्त्व पूर्ण कार्य करता है। विना प्राण के जीव का स्थिर रहना सम्भव

नहीं। जीवित दशा को प्राणी कहा गया है और मृत दशाको निष्प्राण।

मनुष्य अन्न व जल के बिना कुछ समय तक जीवित रह सकता है परन्तु प्राण के बिना वह कुछ मिनटों में ही मर जाता है। योगी लोग सतत प्रयत्न से प्राणों को रोकने में सफल होते है, उस प्रक्रिया को प्राणायाम कहा गया है। वे उतनी देर प्राणायाम विधि से प्राणों को अर्थात् श्वास–प्रश्वास अनिवार्य प्रक्रिया को रोक सकते है। परन्तु यह योगियों की बात है। साधारण व्यक्ति तो श्वास बिना दस पाँच मिनट में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

जिस तरह से अशुद्ध भोजन तथा अशुद्ध जल के सेवन से मनुष्य रोगिष्ट हो जाता है। उसी तरह अशुद्ध वायु से भी मनुष्य रोगिष्ठ हो जाता है। वायवीय रूग्णता को कई बार लोग समझ नहीं पाते और उसकी प्रतिक्रिया को दैवी या दानवीय प्रकोप मान लेते है।

वीतराग महात्मा स्वामी सर्वदानन्दजी महाराजने "सन्मार्ग दर्शन" के शरीरगति प्रकरण में पृष्ठ १३१ पर विभिन्न कार्य भेद से एक ही प्राण के दश भेद का वर्णन किया है। जो निम्न प्रकार है :

(१) प्राण (२) अपान (३) उदान (४) व्यान (५) समाग (६) नाग (७) कूर्म (८) कृकल (९) देवदत्त (१०) धनञ्जय।

(१) प्राण :– प्राण वायु, नाभि चक्र की परिधिमें रहता है। वह कुछ कुम्भक तथा रेचक प्रक्रिया के कार्य करता है। साधारण तौर पर श्वास–प्रश्वासका कार्य यही प्राण करता है। नाभिचक्र प्राण ही संतुलित रखता है। जीवन में किसी संयोग से कभी कभी नाभिचक्र असंतुलित हो जाता है। वह अपने केन्द्र बिन्दु से किसी भी एक ओर झुक जाता है। जिसके कारण शरीर के अन्य कोमल अवयव का कार्य सुचारू रूप से चल नहीं सकता। प्राय: देखा गया है कि नाभि खिसक जाने की अवस्था में व्यक्ति को दीर्घशंका (टट्टी) अधिक होने लगती है।

जानकार व्यक्ति आसन अथवा मालिश इत्यादि से नाभिचक्र को संतुलित कर लेते है। परन्तु निदानाभाव से नादान लोग इसे भी किसी अज्ञात शकित का प्रकोप मान लेते हैं। क्योंकि व्यकित इसमें अति दुर्बल हो जाता है और कई बार तो बुरी तरह खाट पकड़ लेता है।

(२) अपान प्राण :– अपान वायु शरीर के अंदर के सभी मलिनांश के निर्याण का कार्य करता है। यह जीवन के लिये परम आवश्यक आन्तरिक प्रक्रिया

है। टट्टी पेशाब का उचित ढंग से उचित मात्रा में होना इसी प्राण का कार्य है।

अपान वायु के विकृत होने तथा सुचारू रूप से कार्य न करने के कारण व्यक्ति में अनेकों रोग उत्पन्न हो जाते हैं। और मनुष्य स्वस्थ रह नहीं रह पाता। भिन्न–भिन्न व्यक्तियों में एक ही अपान वायु के विकृत होने से भिन्न–भिन्न प्रतिक्रियायें तथा रोग उत्पन्न हो जाते हैं। क्योंकि मनुष्यों की शारीरिक क्षमता तथा स्वभाव भिन्न–भिन्न होते हैं। इस गूढ रहस्यको आयुर्वेद विज्ञान द्वारा ही समझा या सुलझाया जा सकता है।

अपान वायु के प्रकोप का कभी–कभी आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ता है। आयुर्वेद के अभाव में लोगबाग उसे भी दैवी या दानवी प्रकोप अथवा जादू टोना मान लेते हैं, अज्ञानी जन के लिये दूसरा कोई विकल्प भी नहीं होता। जहाँ घोर अंधकार व्याप्त हो। योग्य विद्वान व वैद्य का अभाव हो और दूसरी ओर विकृत प्राण अपनी आश्चर्यजनक प्रतिक्रिया दिखा रहा हो तो ऐसी दशा में किसी परोक्ष शक्ति के मानने के अतिरिक्त दूसरा कोई विकल्प नहीं रह जाता।

विश्व में करोडों लोगों का जीवन ज्ञान विज्ञान से दूर केवल भगवान भरोसे ही चलता है। ऐसी परिस्थिति में जो कुछ भी मान्यता प्रचलित हो जाय उसमें आश्चर्य नहीं।

अपान वायु के विकृत, निर्बल या निष्क्रिय होने का प्रथम प्रभाव व्यक्ति पर जो पड़ता है वह है उसे समुचित टट्टी पेशाब का न होना। ये दोनों प्रतिक्रियाएँ हानिकारक हैं।

इन दोनों अथवा एक ही कारण से व्यक्ति में रोग हो जाते हैं। उन में से कुछ जाने कुछ अनजाने में होते हैं। शरीर दुर्बल व जरजर हो जाता है। मानसिक तौर पर व्यक्ति निस्तेज हतप्रभ एवं हतबुद्धि हो जाता है। अज्ञानता वश इसे भी भूतप्रेत जादू टोना ही मान लिया जाता है।

(३) उदान वायु :– उदान वायु मनुष्य के जीवन यापन में विविध प्रकारका उत्साह, साहस तथा उत्तेजना प्रदान करता है। सामान्यतः प्रातः उठने से सायं सोते समय तक स्फूर्ति प्रदान करता रहता है। उदान वायु जितना प्रबल तथा शुद्ध होता है, उतना ही शरीर में स्फूर्ति पैदा करता है। वह हर कार्य तन्मयता एवं योग्य ढंग से करता है। वह अच्छा व्यक्ति, अच्छा लेखक, अच्छा खिलाड़ी तथा अच्छा कर्मचारी होता है।

उदान प्राण के विकृत होते ही मनुष्य सुस्त भीरू एवं अकर्मण्य हो जाता है उसका स्वास्थ्य शनैः शनैः गिर जाता है। व्यक्ति के अत्यंत उदासीनता एवं दुर्बलता को भी अज्ञानता वश लोग भूतप्रेत जादू टोना का प्रभाव मान लेते हैं। और उचित चिकित्सा के बदले में अवैज्ञानिक कर्मकान्ड तथा मंत्रतंत्र के चक्कर में पड़ जाते हैं।

(४) व्यान प्राण :– व्यान वायु शरीर में विविध रसायनिक पदार्थों को सारे शरीर में संचार करते रहने का कार्य करता है। प्राणीको जीवित तथा पुष्ट रहने के लिये यह प्रक्रिया अनिवार्य है। भोजन प्राप्त होने के बाद उसमें से कई प्रकार के रसायनिक पदार्थ बन कर यथा योग्य शरीर के अवयवोंका पोषण करता है। इन रसायनिक पदार्थोंको समुचित रूप से सम्बन्धित अवयवों तक पहुँचाने का कार्य व्यान वायु करता है। यह प्रक्रिया व्यान वायु के अशुद्ध या विकृत होने के कारण यदि न कर सके तो जीवन जीना कठिन हो जाय। शरीर के अंग व इन्द्रियाँ अपना कार्य ठीक प्रकार से न कर सके। और मनुष्य लगभग बेकार सा हो जाय। ऐसी अवस्था को भी अज्ञानता वश लोग भूतप्रेत जादूटोना मान बैठते हैं।

(५) समान प्राण :– मनुष्य का शरीर पंच कोषी है। यह पाँच कोषों से निर्मित है। अर्थात् (१) अन्नमय कोष (२) प्राणमय कोष (३) मनोमय कोष (४) विज्ञानमय कोष और (५) आनन्दमय कोष।

ऊपर के पाँच कोषों में से समान वायु ही प्राणमय कोष है। मनुष्य का मन इसी प्राणमय कोष में सुरक्षित, पोषित एवं प्रोत्साहित रहता है।

समान प्राण मुख्य प्राण हैं जो सारे शरीर में व्याप्त रहता है। अन्य जितने प्राण हैं, उनमें जब कभी कोई कमी आ जाती है तो समान प्राण उसें पूर्ण कर देता है।

मनुष्य को शुद्ध बुद्ध एवं कर्मपारायण समान प्राण ही रखता है। समान प्राण यदि विकृत हो जाय तो सर्व प्रथम मनुष्यका मन विकृत एवं विचलित हो जाता है। सुख शान्ति एवं विवेक जीवन से दूर हो जाते हैं। क्योंकि प्राणमय कोष में ही मनोमय कोष स्थापित एवं सुरक्षित है। जैसे ही प्राण अवरुद्ध होता है, मन व्याकुल हो जाता है और जीव छटपटाने लगता है। हाथ पैर– पटकने लगता है। जैसे ही प्राण का अवरोध दूर हो जाता है वह सामान्य हो जाता है।

प्राणी के जीवन में समस्त क्रियाकलाप में समान वायु ही सहचारी होता है। और इसी लिये उसकी विकृति में समुचे जीवन की विकृति है।

समान वायु का विकृत होना जीवन का व्यर्थ हो जाना है। अपंग होना अविकसित बुद्धि का होना, मंदबुद्धि का होना या पागल होना आदि विकृत प्राण की ही प्रतिक्रिया है। समान प्राण के प्रभाव का कोई अनुमान नहीं है कि कब किस प्रकार का कितनी प्रभावशाली प्रतिक्रिया देगा। इसे समझने में कई बार–निष्णात लोग भी भ्रमित हो सकते हैं।

विकृत प्राण की विविध प्रतिक्रियाओं से व्यथित हो कई बार लोग भूत–प्रेत जादू टोना का प्रभाव मान बैठते हैं।

(६) नाग प्राण :– प्राणी के सुषुप्तावस्था में भी उसके सतत अंदरूनी अवयव अपना कार्य करते रहते हैं। इसमें नाग प्राण सहचारी होता है। इस अवस्था में स्वसन प्रक्रिया या अन्य अवयव में कभी कोई गतिरोध रूक जाय तो उसका निर्माण नाग प्राण ही करता है। वैसे नाग वायु, समान वायु के ही अंतर्गत आ जाता है, परन्तु परिस्थिति के अनुसार नाग प्राण कहा गया है।

नींद का उचट जाना, नींद न आना नींद का अचानक टूट जाना, इत्यादि नाग वायु की विकृति की प्रतिक्रिया है।

व्यक्ति की बुद्धि व मन कभी नींद के विना स्वस्थ नहीं रह सकते। एक रात व्यक्ति न सोये तो प्रातः उसका शरीर व मन भारी भारी सा लगता है। जब तक वह नींद पूरी नहीं कर लेता उसमें स्फूर्ति नहीं आती। परिस्थिति वश यदि कोई नींद न ले पाये तो बीमार हो जाता है। शारीरिक कार्य तो थोड़ा बहुत कर सकता है परन्तु बौद्धिक कार्य बिल्कुल नहीं कर सकता।

मनुष्य के स्वस्थबुद्धि व स्वस्थ मन रहनें में वायु का ही महत्त्व है। भ्रष्ट बुद्धि, अर्ध पागलपन, अन्य मनष्कता, उग्र मनष्कता मानसिक विकलांगता, पागलपन आदि नागप्राण की ही प्रतिक्रिया स्वरूप होता है। इन प्रतिक्रियाओं को न समझने के कारण लोग कहते हैं किसी ने मैली विद्या का प्रयोग कर दिया है। ऐसा मानकर भूत प्रेत जादू या टोना आदि मान बैठते हैं।

(७) कूर्म प्राण :– कूर्म वायु से प्राणी को प्रजनन शक्ति प्राप्त होती है। स्त्री व पुरूष के अंदर समुचित विषय शक्ति तथा गर्भ शक्ति यही वायु प्रदान करता है। कूर्म वायु के कारण मनुष्य की कार्यशक्ति या तो अत्यधिक उत्तेजित हो जाती है या तो मंद पड़ जाती है। उत्तेजना की अवस्था में व्यकित कामांध हो अव्यवहारिक अथवा अनाचारी हो जाता है और मंद हो जाने की दशा में वह निस्तेज निर्वीर्य व

वर्चस्वहीन हो कर जीवन के माप दंड से नीचे गिर जाता है। यह भी मनुष्य की असाधाराणावस्था है। जिस में मनुष्य की दिनचर्या आचार विचार, बातचीत अव्यवहारिक हो जाती हैं। उक्त दोनों अवस्थाओं को ही ना समझी में किसी अज्ञात शक्ति का प्रकोप मान लिया जाता है।

(८) कृकिल प्राण :– कृकिल वायु भी समान वायु के अंतर्गत ही आता है। प्रकारान्त वश इसे कृकिल कहते है। जो काम "नाग वायु" सुषुप्त अवस्था में करता है वही कार्य कृकिल वायु जागृत अवस्था में करता हैं, अपने निरन्तर कार्यक्रम में जब प्राण कहीं अवरूद्ध होता है तब उसका निराकरण कृकिल वायु कर देता है।

शरीर को अचानक झनझना देना विविध अंगों को खींचतान देना, विविध मांसपेशियों में तनाव ला देना शरीर की विविध हलचलों में अवरोध या दर्द लाना, छींक जमहाई या शारीरिक एँठन, गुठन आदि कृकिल वायु की प्रतिक्रियाएँ होती हैं।

शरीर में जाने अनजाने अनेकों गतिरोध उत्पन्न होते रहते हैं और उसका कृकिल प्राण द्वारा निराकरण होता रहता है। कभी कोई प्रतिक्रिया किन्हीं कारणों वश लम्बी खींच जाती है तब उसे भी अज्ञानतावश लोग भूतप्रेत, जादू टोना मान बैठते हैं। शरीर की बनावट बहुत ही विकट एवं वैज्ञानिक है। इसमें कब क्या घटे कहा नहीं जा सकता।

हाथपाँव अथवा उंगलियों में खींच का आना, आँखों का टगजाना मुँह (दांतों) का बंद रह जाना, अंगों का फड़काना, चक्कर आ जाना इत्यादि प्रतिक्रियायें किसी किसी में होती हैं। कुछ लोग वैज्ञानिक सूझबूझ में चिकित्सा करवाते है तो कई लोग विशेषतः ग्रामीण जन पूजापाठ तथा कर्मकाण्ड द्वारा कल्पित भूत–प्रेत जादू टोना का निवारण करते फिरते हैं।

वे प्रतिक्रियायें तो समाप्त होती ही हैं किन्तु उसके समाप्ति तक जो कुछ पूजा–पाठ हो चुका होता है उसे उसका अनायास ही श्रेय जाता है।

उत्तर प्रदेश के जौनपुर जिले में चौकिया नामक एक धार्मिक स्थान है। जहाँ हजारों लोग विविध मान्यतायें लेकर आते हैं। खाँसी, खुजली, चेचक आदि के निवारणार्थ भी लोग आते हैं विशेषतः औरतें वहाँ पहुँचती हैं।

(९) देवदत्त प्राण :– चित्त में शान्ति रखना विषय वासना के तनावों से दूर रखना, मन को प्रफुल्लित एवं कार्य प्रेरक रखना देवदत्त वायु का कार्य है। यह सर्वथा जीव को उत्कर्ष की ओर चलने में सहचारी होता है, इसकी कोई विकृत प्रतिक्रिया

नहीं। इसके अभाव में योगी समाधिस्थ नहीं हो पाता।

(१०) धनञ्जय प्राण :- धनञ्जय प्राण अत्यंत सुंदर प्राण है। सात्त्विक विचार के लोगों में, साधु, सन्यासियों में इसकी बहुत महत्ता है।

मन को निर्विषयी बनाने, एकाग्र करने में तथा ध्यान धारण समाधि में यह सहचारी होता है।

मनुष्य का कभी कभी चित्ताकर्षित रह जाना, अत्यंत एकाग्रता से ध्यान मग्न रह जाना, विचारों में डूबा रह जाना इत्यादि धनञ्जय वायु की प्रतिक्रिया है।

कवि कविता लिखने में, विद्यार्थी गणित लगाने में, दार्शनिक विचार करने में कभी–कभी स्वयं के स्थित्व को भूल गया होता है। प्रातः से शाम हो जाती है उसे पता नहीं चलता। इस अवस्था में धनञ्जय वायु सहचारी होता है। इसी वायु के आधार पर योगी समाधिस्थ अवस्था को प्राप्त करता है।

क्लेश

जिन कारणों से जीव दुःखी होता है उसे क्लेश कहते हैं। क्लेश जीवात्मा की अर्जित दशा है। क्लेश का सम्बन्ध सीधे कर्म से हैं। जैसा जीव कर्म करता है वैसा सुख या दुःख भोगता है।

क्लेश जीव के साथ चार अवस्था में रहता है।

अविद्या क्षेत्र भुत्रेषां प्रसुप्त तनुं विच्छिन्नोदाणाम् (योग दर्शन : २/४)

प्रसुप्त, तनु, विछिन्न और उदार इन चार प्रकार के अविद्या, अस्मिता राग, द्वेष व अमिनिवेश नामक ल्केशों की उत्पत्ति का कारण अविद्या है।

(१) प्रसुप्त क्लेश :- यह क्लेश उसे कहते हैं जब जीव उसे वर्तमान में भोगता नहीं रहता परन्तु उसका कारण उसमें व्याप्त रहता है जो योग्य अवसर पर उपस कर दुःख का कारण बनता है।

(२) तनु :- क्लेश को जब योग्य अनुष्ठान अथवा योग द्वारा क्षीण कर दिया जाता है तो उसे तनु क्लेश कहा जाता है।

(३) विछिन्न :- विछिन्न क्लेश की वह अवस्था है जब वह किन्हीं अन्य प्रबल संस्कारों से दब गया होता है।

(४) उदार :- उदार उस दशा को कहते हैं जब क्लेश वर्तमान में प्रभावरत होता है।

क्लेश पाँच प्रकार के होते हैं और वे पाँचों उक्त चार अवस्थामें से किसी एक अवस्था में हो सकते हैं। पाँच क्लेश हैं।

(१) अविद्या (२) अस्मिता (३) राग (४) द्वेष (५) अभिनिवेश

अविद्या अस्मिता राग द्वेषाभिनिवेशाः पंच क्लेशाः।। (योग दर्शन २/३) अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, और अभिनिवेश ये पाँच प्रकार के क्लेश होते हैं।।

(१) अविद्या क्लेश :– जब किसी विषय की सम्पूर्ण जानकारी न हो। आधी अधूरी जानकारी हो या अशुद्ध जानकारी हो तो उसे अविद्या कहते हैं। वास्तव में तो समूचा का समूचा क्लेश ही अविद्या के अंतर्गत आ जाता है। मात्र बृहद् विश्लेषणात्मक दृष्टि से उसके पाँच भेद ऋषियों ने लिखे हैं।

मनुष्य के अंतः करण में अंतरश्रोतों से होने वाली प्रक्रिया के कारण उद्धिग्नता व्याकुलता या उन्माद इत्यादि होते हैं। वह कई बार आकस्मिक या विस्मयपूर्ण ढंग से उभरता है जिसे अज्ञानता वश लोग भूत प्रेत जादू टोना इत्यादि मान बैठते हैं।

प्रथम विचार– (अंतर श्रोत– अविद्या) :– दो व्यक्ति पैदल चल कर नदी नाला पार करते हुए अपने घर पहुँचे। घर पहुँचने पर दोनों को वमन (Vomit)का आभाष हुआ। एक व्यकित समझदार था। उसने समझ लिया कि रास्ते में नदी इत्यादि का जल पी लेने से रोग लग गया है। उसने चिकित्सक को बता कर औषधि ले ली और ठीक हो गया, उधर दूसरा व्यकित कुछ सोच विचार न कर वैसे ही पड़ा रहा (कई बार गरीबी के कारण भी चिकित्सा नहीं कर पाते हैं) फल स्वरूप उसे वमन का ज्यादा होना आरम्भ हो गया। उसकी दशा हर घण्टे बिगड़ती गई। अंध विश्वास एवं अंध श्रद्धालु परिवार होने के नाते चिकित्सा कम पूजापाठ "निकार" झाड़फूक अधिक किया। भूत भगानेवाले ओझा ने उसे भूत बताया और जिस रास्ते से वह चलकर आया था पहले पूछ लिया फिर बताया कि वहाँ तो नदी के किनारे उसी पेड़ पर एक दैत्य रहता है उसने ही इन्हें पकड़ा है। और नाना प्रकार के पूजापाठ, धूपदीप घर बाहर करवाया।

शनैः शनैः वह स्वस्थ हो गया परन्तु लोगबागने इसे औषध का प्रभाव न मान कर भूतप्रेत ही माना। यह सब अविद्या का प्रकोप है।

द्वितीय विचार :– शहर से दूर एक अत्यंत पिछड़ा हुआ गाँव है। वहाँ न सड़क है न बिजली। लोगों में भूतप्रेत पर अटूट विश्वास है। एक दिन एक बच्चा ज्वर से पीड़ित हो गया। घरेलू तौर तरीकों व दवाइयों से संयोग वश ठीक नहीं हो सका। परिवार के लोग दूसरों से सलाह सूचन लेने लगे। जिस को जैसा सूझा, सुझाया।

उधर बच्चे की दशा गम्भीर होती गई। घरवालेने यथाश्रद्धा ,धूपदीप, पूजापाठ प्रारम्भ कर दिया। बच्चा ज्वरकी अधिकता के कारण अचेतन मन से कुछ कुछ बड़बड़ाने लगा। उसका बड़बड़ाना सुनकर लोग निश्चित रूप से उसे भूत प्रेत का ही प्रकोप मान बैठे। जो कुछ घरेलू औषधियाँ दी जा रहीं थीं उसे भी बंद कर के उसके माँ–बाप बड़े पुजारियों के पास दौड़े। भूत भगाने वाला; ओझा, आया और बताया कि कोई बहुत जल्लाद दैत्य है। बहुत कठिनाई से मानेगा कोई बलि चढ़ाना पड़ेगा। वर्ना बच्चे की जान दैत्य ले लेंगा। विधि की तैयारी हो गई। बलि का बकरा आ गया। रात १२ बजे बलि करना था। उधर बच्चे का ज्वर बच्चे के सहन शक्ति को पार कर गया। और वह रात १२ बजे के पहले ही मर गया। लोग देखते रह गये। और दैत्य के डर से आतंकित हो गये। बच्चा मर गया इससे अधिक डर अब इस बात का अधिक डर सारे गाँव में छा गया कि अब वह दैत्य न जाने क्या करेगा। ओझा व पंडितों ने भूत प्रेत के निवारणार्थ कुछ कर्म कान्ड बताया। उसके अनुसार बकरे की बलि दी गई। और गीले आटे का एक मानव पुतला बनाया गया फिर उसके साथ सिंदूर नारियल, धूप, दीप इत्यादि रखकर मध्यरात्रि में ले जाकर एक निर्दिष्ट स्थान पर रखा गया और तब लोग शान्त हुए कि अब जाकर वह क्रूर प्रेत गया हैं।

इस में सत्य यह था कि बच्चे को केवल ज्वर था जो सहन शक्ति को लांध गया और मृत्यु हो गई। यह भी अविद्या का प्रभाव है।

तीसरा विचार – (अंतर श्रोत– अविद्या) :– एक बार भावनगर परा (गुजरात) के रेलवे कोलोनी में श्रीमान एस.आई. त्रिपाठीजी के निवासस्थान पर सायं भजन सत्संग में गया हुआ था शायद यह ९/१२/८७ के दिन की बात है।

श्रीमान् त्रिपाठीजी एक निष्ठावान तथा धर्मनिष्ठ व्यक्ति है। रेलवे में एकाउन्ट ऑफिसर है। उनको सत् सांई बाबा पर बड़ी श्रद्धा है। उस दिन सत्संग के समय भगवान कृष्ण आदि के साथ सत् सांईबाबा की भी प्रतिमा कांच के फ्रेम में लगी हुई वहाँ एक लकड़े की चौकी पर रखी थी। लोगबाग बड़े लय धुन एवं श्रद्धा से भजन गा रहे थे। एक व्यक्ति का भजन समाप्त होते ही दूसरे व्यक्ति का भजन प्रारंभ हो जाता था। सभी आत्मविभोर थे। इसी बीच संभवतः हवा के झोंके से सत सांईबाबा की प्रतिमा वाली फ्रेम थोडी सी हिल गई। बस मानो एक लहर आ गई सभी भक्तजन एक दम उत्साहित हो सत् सांई बाबा की जय जयकार करने लगे। उनका कहना व मानना था कि 'बाबा' स्वयं यहाँ उपस्थित थे। बाबा बड़े दयालु हैं। हम सब की खोज

खबर लेते रहते हैं। लोगोंने हाथ जोड़ कर उस प्रतिमा के सामने सर झुककर बाबा की आराधना की और सत्संग को बहुत सफल गिना।

मुझे इस घटना में केवल अंधश्रद्धा कि ही झलक दीख पड़ी। वर्ना इसके पीछे कोई सत्य न था। यह भी अविद्या का एक रूप है।

(४) चौथा विचार– (अंतरश्रोत– अविद्या) :– सन् १९६०की बात है। एक बार मैं सौराष्ट्र जनता ट्रेन से बम्बई जा रहा था। हमारे सेकन्ड क्लास के डिब्बे में ही एक गेरूआ वस्त्रधारी साधु महाराज, अमदावाद से घुसे थे और मेरी बगल में आकर बैठ गये। गाड़ी चली तो अपनी सिद्धियों के चमत्कार की बातें करने लगे। मैं ने उन से निवेदन किया कि कुछ चमत्कार यदि सम्भव हो तो दिखावें।

महात्माजीने मेरी आँखों पर एक कपड़े की पट्टी बाँध दी और अपने झोले में से कुछ काले काले कोयले के टूकडे निकाल कर एक टूकडा मेरे मुँह में डाल दिया और कहा इसे खा जाओ और बताओ कि यह क्या चीज है। मैं ने बताया कि मुझे पेंड़ा जैसा स्वाद आ रहा है वहाँ बैठे लोग हँस पड़े। बोलने लगे कि कोयला खा कर पेंडा बता रहे हो। उस समय मेरी भी समझ में नहीं आया न ही मुझ में अधिक बुद्धिमानी थी।

बाद में कुछ आर्य बंधुओंने बताया कि ये ठग लोग कोयले के टूकडों में पैडा को भी काले रंग में कोयले की शकल बना कर रखते हैं। दूसरे प्रेक्षकों को कोयला दिखाते हैं और आँख बंद किये व्यक्ति को काले रंग का पैड़ा खिला कर मुर्ख बनाते हैं, कई बार ऐसे ही लोगों को मादक वस्तु खिलाकर उसे बेभान या अर्धभान बना कर लूट भी लेते हैं।

उस साधुने अपना नाम परमेश्वरानन्द बताया था और पता दिया था मम्बादेवी मंदिर, बम्बई। मैं ने वहाँ जाकर छानबीन की परन्तु कोई पता नही चला। वहाँ के पूजारी व अन्य लोगों ने बताया कि ऐसा कोई साधु यहाँ नही रहता, मैं ठगा ठगा सा रह गया। यह भी एक अविद्या थी जो मुझे प्रभावित कर गई।

पाँचवा विचार – (अंतरश्रोत– अविद्या) :– आये दिन प्राय: ऐसी घटनायें घटती रहती हैं जिस में धन प्राप्ति, स्वर्ण दो गुना करने तथा पुण्यादि लाभ का लालच देकर ठग लोग साधु सन्यासी के भेष में लोगों को खास कर स्त्रियों को ठगते रहते हैं। यह सब अविद्या है।

छठा विचार (अंतरश्रोत अविद्या) :– गुजरात में सुरेन्द्रनगर जिलेमें सायला नामक स्थान पर एक वेदमन्दिर है। वहाँ पं. गोपालदासजी रहते थे। वे बड़े ही विद्वान

व वितरागी थे। सन् १९५९ में पंडितजी एक बार मेरे निवासस्थान पर (सुरेन्द्रनगर) आये। बातचीत के दौरान उन्होंने मुझे निम्न घटना बतायी।

सुरेन्द्रनगर के पास ध्रांगध्रा नामक एक शहर है (गुजरात) वहाँ एक मकान में लोगों की मान्यता थी कि भूत रहता है। मकान बहुत दिनों से खाली पड़ा था। लोग उसे भूतिया बंगला कहते थे। लगभग १९०५ की बात है। एक मिलिटरी के नौजवान ने भूतप्रेत की बातों को स्वीकार नहीं किया और वह रात को उसी बंगले में रहने के लिये तैयार हुआ। लोगबागने उसे कहा कि जान का खतरा है ऐसा मत करो। परन्तु नौजवान नहीं माना और रात लगभग १० बजे उस भूतिया बंगले में पहुँच गया। और अंदर के रूममें बैठ गया। वह अपने साथ एक टार्चबत्ती व अपना पिस्तौल लेते गया। बंगला बड़ा था और कई दरवाजे थे। लगभग १२ बजे रात के अंधेरे में एक भूत विकराल, काला काला हूँडड् हूँडड् हूँडड् करते हुए बगल के रूम से आहिस्ता आहिस्ता निकलना प्रारम्भ कर दिया। वह नौजवान चौकन्ना हो गया। उसने टार्च जला के देखा तो उसे लगा काली काली कोई विशालकाय काया उसकी ओर लम्बे लम्बे ऊँचे ऊँचे पग रखते हुए आ रही थी। वह थोड़ा भयभीत हुआ और सोचा जब मरना ही है तो लड़ कर ही मरा जाय पहले तो उस नौजवान ने अपनी पिस्तौल निकाली और उस काया की ओर लक्ष्य कर दाग दिया। दूसरे ही क्षण उस काया ने विद्युत गति से नौजवान को दबोच लिया और जमीन पर गिर कर एक दूसरे से लथ्थम लथ्थ हो गये। नौजवान भी अदम्य साहस से भरा था और हृष्ट पुष्ट था। उसने नीचे होते हुए भी उस काया को ऐसा दबोचा कि वह चीख मार उठा। आखिर में नौजवान ने उसके शिर को नीचे जमीन पर रख कर उसे पकड़ लिया और उसके शिर को नीचे जमीन पर रखकर उस पैर बैठ गया। और पूछा बता तू कौन है ? काया ने, हाथ जोड़ कर स्वीकार कर लिया कि वह भूत प्रेत वहीं पर चोर है। उसने बताया कि यह खाली बंगला उसका अड्डा है चोरीका माल वह नहीं छिपाकर इधर उधर वह चोरी करता था उसके पास तीन चार आदमी और भी हैं वे लोग भी बाद में पकड़े गये।

नौजवानने पूछा कि तुम्हें पिस्तौल की गोली क्यों नहीं लगी। उसने बताया कि तुम डर गये थे तुम्हारा हाथ कांप रहा था मैं ने अपने काले वस्त्र को हाथों से बहुत चौडा कर रखा था तुम्हें पता नहीं चला कि मेरा शरीर किधर है और मेरी तकदीर भी थी कि मैं बच गया। नौजवानने उसे बहुत मारा और रात को ही पुलिस को सौंप दिया। भूत बंगले का भेद खुल गया और बंगले का धीरे धीरे लोग उपयोग करने लगे।

यह भी एक अविद्या ही है जिसके अन्धकार में मानव प्रेत –पापाचार एवं पाखण्ड करते हैं।

सातवाँ विचार (अंतरश्रोत अविद्या) :– चन्द्रग्रहण अथवा सूर्य ग्रहण एक खगौलिक या भौगोलिक सत्य है। ग्रहण कितना कब लगेगा, कब दृष्टि गोचर होगा उसकी जानकारी वैज्ञानिक या खगोल शास्त्री ग्रहण लगने के वर्षो पूर्व बता देते हैं जो आजतक कहीं गलत नहीं साबित हुआ। अब तो चाँद तक मनुष्य आने जाने लगे हैं और वहाँ की सभी भौगोलिक जानकारी मनुष्य को प्राप्त हो चुकी है। फिर भी लोगों में सूर्य ग्रहण व चन्द्र ग्रहण पर अंध श्रद्धा तथा अंध विश्वास है। करोड़ों लोग विशेषतः ग्रामीण आदिवासी आदि मानते हैं कि राहु नामक राक्षस चाँद को निगल जाता है फिर बहुत कुछ अनुनय विनय करने पर छोड़ता है। उस प्रकार की कहानियाँ माँ बाप बचपन में ही बच्चों को सुना सुना कर उन में अज्ञानता भर देते हैं। जो बडा होने पर अटूट श्रद्धा बन कर मनुष्य को अंधेरे में भटकाती रहती है।

यह भी अविद्या की एक प्रक्रिया ही है।

आठवाँ विचार – (अंतरश्रोत – अविद्या) : कुछ ऐसी भी चीजें हैं जो होती ही नही। उसका कोई स्थित्व ही नही फिर भी अंध श्रद्वालु उनका स्थित्व मानते हैं। जैसे स्वर्ग (लोक), नर्क (लोक) वैकुण्ठ पुरी, पातालपुरी, आतालपुरी, अमृत, नागमणि, क्षीर सागर, स्वर्ग गंगा, सरस्वती नदी (त्रिवेणी) इत्यादि।

अभाव को भाव मान कर नाना प्रकार के अज्ञानता भरे कर्म कान्ड करते हैं।

अस्मिता (अंतर प्रक्रिया– अस्मिता)

अविद्या जीव की एक दार्शनिक अल्पज्ञता अथवा निर्बलता है जिस में वह तत्त्व हीन अवैदिक निर्णय ले लेता है और असत्य में भटक जाता है।

जीव चेतन पदार्थ है अन्य सभी सृष्टिके पदार्थ (ईश्वर के अतिरिक्त) जड़ हैं। जीव को प्राप्त चित्त, मन, बुद्धि एवं अहंकार सब अचेतन है। किन्ही उलझनों में जीव इस शाश्वत विवेक को विस्मृत कर बैठता है। और अचेतन में चेतन या अनात्म में आत्मदर्शन कर बैठता है। उसे अस्मिता नामक अविद्या कहा गया है।

उस तरह से जब अज्ञान को ज्ञान, अचेतन को चेतन, अनात्म को आत्म

मन एकाग्र नहीं हुआ। वे जब वापस अपने आश्रम आये तो उनके मन में ऐसा विश्वास हुआ कि उनका आश्रम एक विशेष स्थान है जहाँ मन एकाग्र होता है अन्य स्थान मन को एकाग्र करने के लिये उपयुक्त नहीं।

वास्तवमें सुगंध का सन्यासी के अंतर मन में व्यसन आ चुका था। जब तक रोज रोज के अभ्यस्त मन को उस सुगंध की प्राप्ति नहीं होती थी उनका मन स्थिर नहीं होता था। उस व्यसनाभाव को सन्यासी स्थान का प्रभाव समझ कर तदानुसार विचार व्यक्त करते रहे। वास्तव में यह स्थान का नहीं परंतु वातावरण का प्रभाव था। यह भी अस्मिता का प्रभाव है। जिससे लोगों को किसी स्थान विशेष पर ही उपासना की श्रद्धा का जन्म हुआ, जो मंदिर, मस्जिद, गिरजाधर इत्यादि के रूप में विश्व में पनप गया और सर्व व्यापकता गौण सी बन गई।

राग (अंतर प्रक्रिया)

जब मनुष्य सभी सुख सुविधाओं से परिपूर्ण होता है और उसका जीवन भोग विलास में सर्वथा डूबा होता है तब उससे वंचित रहना उसके लिये अत्यंत क्लेश की बात होती है। उसे राग कहते हैं।

जिस तरह एक व्यसनी अपने व्यसन के अभाव में दुःखी हो तड़पता है। उसी तरह विलासी व वासना युक्त व्यक्ति अपनी वासना की भूख से तड़पता है।

पहला विचार (अंतर श्रोत प्रक्रिया–राग) :– एक धनाढय व्यक्ति है। उसका वातानुकूलित घर है, नौकर चाकर हैं, अत्यंत विलास पूर्ण जीवन हैं। अचानक उसके व्यापार में घाटा आ जाता है और उसका दिवाला निकल जाता है और वह कर्ज से दब जाता हैं।

अब वह एक छोटे मकान में किसी तरह गुजारा करता है। यह जीवन उसके लिये बड़ा कष्टदायी है। वह आराम तलबी के कारण बडे नाजुक शरीर का है। गरमी सर्दी उससे सहन नहीं होती। उपर से मानिसक तनाव है। कर्जदार तंग करते है। वह बीमार पड़ जाता है और अपनी मानसिक संतुलन खो बैठता है। उसे भी अंध श्रद्धालु, पंडे, पुजारी व साधुओं के कहने के अनुसार, ग्रह, श्राप या देवी देवता का प्रकोप मान बैठते हैं। जब की यह 'राग' प्रक्रिया है।

दूसरा विचार (अंतरश्रोत– राग) :– एक स्त्री है। अत्यंत सुन्दर, सुडोल

तथा नौजवान है। जीवन में सुख भी है। सुन्दर वस्त्र पहिनना, आभूषण धारण करना, आकर्षक श्रृंगार करना, घूमना, फिरना वह सब उसके प्रिय शौक हैं।

अचानक वह बीमार पड़ती है। उसे चेचक हो जाता है। उसका चेहरा तथा शरीर चेचक के गहरे गहरे दागों से विकृत हो जाता है। एक आँख भी खराब हो जाती है।

अब वह अत्यंत दुःखी है। उसे बड़ा आघात लगता है। सुन्दरता के दिन जाने की ग्लानि में हमेशा डूबी रहती है। पति व परिवार के अन्य लोगों का भी उसके साथ व्यवहार बदल गया है। मानसिक तनाव के कारण उसका स्वभाव विकृत हो गया। इस विकृति को भी गुरुओं व साधुओं ने देवी देवता का प्रकोप बतलाया। वैसे भी साधारण तौर पर विशेषतः ग्रामीण समाज चेचककी बीमारी को "माताजी" कहते हैं और माताजी पर लोगों की बड़ी आस्था है। जब कि दूसरी ओर वैज्ञानिक प्रयास से बहुत कुछ अंशों में इस बीमारी को दूर किया जा चुका है।

तीसरा विचार (अंतर श्रोत राग) :- एक दम्पति है। नई नई शादी हुई है। पति-पत्नी एक दूसरे के प्यार में सर्वथा सर्वदा डूबे रहते है। बहुत सुखी है।

एक दिन सिनेमा देख कर रात को घर आते समय कुछ चोरों ने उन पर हमला कर दिया सारे जेवर उतार लिये और भाग गये। छीना झपटी में दोनों काफी घायल हो गये। पत्नी ने होस्पीटलमें दम तोड़ दी। पति को जब पत्नी के मृत्यु का पता चला तब उसे बहुत गहरा आघात लगा। उससे इतना बड़ा आघात सहन नहीं हो सका और रुदन से तड़फडाने लगा। अंतमें वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठा। यहीं किं कर्तव्य विमूढ हो आवाक सा बैठा रह गया। अब वह शान्त बैठा रहता है कोई बात चीत नहीं, किसी से कोई सम्बन्ध नहीं। घर वाले खाना इत्यादि खिला दिये तो ठीक वर्ना वैसे ही बैठा रहता। कभी कभी अकेले में ही अपनी पत्नी से बडे प्यार से बातचीत करता अपनी पत्नी के रूप में दरवाजे पर जाकर उसे पुकारता। वस यही उसका जीवन हो चुका था।

यह सब राग प्रक्रिया है। यदि अधिक अनुराग न होता तो उसे कुछ भी नहीं होता था। वह भी औरों की तरह दूसरा व्याह कर लेता।

अंतरंग प्रक्रिया – क्लेश

(४) चौथा विचार (अंतरंग-राग) एक स्त्री को कोई सन्तान नहीं थी। शादी के लगभग १५ वर्ष बाद उसे पुत्र हुआ। पुत्र बड़ा सुन्दर हृष्ट-पुष्ट तथा होन हार

था। उसकी माँ उसे जी जान से प्यार करती थी। पुत्र आठ वर्ष की उम्र में स्कूल से लौटते समय किसी मोटर सायकल के अकस्मात से घायल हो गया और मर गया। माँ इस आघात के मारे झटपटा उठी और अंतमें उसका मानसिक संतुलन बिगड़ गया और वह सदा के लिये पागल हो गई। यह भी 'राग' प्रक्रिया का ही एक स्वरूप था।

(५) द्वेष (अंतर प्रक्रिया)

मनुष्य के जीवन में जब किसी प्रकार की बाधा या विघ्न आता है। तो उसके मन में बड़ा आक्रोश उत्पन्न होता है। इसे द्वेष भी कहा जाता है।

द्वेष चित की अत्यंत भयानक स्थिति है। ऐसी मनोदशा में व्यक्ति अपना विवेक खो बैठता है। और कई बार जघन्य कार्य कर बैठता है।

निर्बल व निःसहाय व्यक्ति जब कुछ कर डालने यें असमर्थ होता है तो वह अपनी विवशता में अंदर ही अंदर घुटता रहता है। उस द्वेषाग्नि में उसका अंतःकरण विकृत हो जाता है।

वह विकृति एवं विकारों का पोटला मात्र बन कर रह जाता है। शनैः शनैः उसमें मानसिक व शारिरिक रोग व निर्बलता आ जाती है। और वह चिड़चिड़ा अथवा आक्रोशी स्वभावका हो जाता है। और समय समय पर असाधारण व्यवहार कर बैठता है। यह द्वेष प्रक्रिया है। जिसे अज्ञानतावश भूतप्रेत आदि मान लिया जाता है।

पहला विचार – (अंतरश्रोत– द्वेष): एक युवक था, बी.ए. के प्रथम वर्ष में पढ़ता था उसके स्कूल में एक लडकी ग्यारहवीं कक्षा में पढ़ती थी, वह भोली थी। उसे देश दुनिया व प्यार इत्यादि का ज्ञान न था। वह लड़के से बातचीत कर लिया करती थी। उसका कहना मानती थी। लडका एक दम आसक्त था। लडकी के माँ–बाप उसकी शादी की बात अपने ही किसी रिश्तेदार के यहाँ कर चुके थे। वह रिश्तेदार का लडका घर पर आया जाया करता था और लडकी के साथ कभी कभी शहर–बाजार भी जाया करता था।

एक दिन वे दोनों बाजार से घर जा रहे थे कि कालेज के प्रेमीने उन दोनों को देख लिया। बस मारे द्वेष के वह अन्धा हो गया। उस दिन उसने घर जाकर खाना नही खाया उसके सामने उस लडके का ही चेहरा घूम रहा था जो उसकी प्रेमिका के साथ था। दूसरे दिन उसने उस लडकी से पूछा, लड़कीने भोलेपन में बताया था कि वह तो उसकी बुआ का लडका है। लडके के मन में द्वेष और भडका। वह लड़की

के घर के इर्द गिर्द घूमता रहता। एक दिन वह रिश्तेदार युवक लड़की के घर जा रहा था कि कॉलेजियन लडका उस पर टूट पडा, मारा मारी हो गई, लोग बाग इकट्ठे हो गये छुड़ा दिये। लोगों के पूछने पर वह कोई कारण नहीं बता पाया बस उतना ही कहता था कि दूसरा लडका यहाँ आता ही क्यों है ? वह इतने क्रोध में था कि उसका अंग अंग काँप रहा था। इतनी स्फूर्ति आ गई थी कि तीन चार व्यक्तिने कठिनाई से उसे पकड़ रखा था। दूसरा लड़का सीधा सादा कुछ समझ नहीं पाया। किसी तरह झगडा शान्त हुआ और ये सब घर गये। कॉलेजियन अपने घर पर अशान्त रहा और खाना न खा पाया। घरवालों को, कुछ पता नहीं कि दोसे क्या हो गया है।

एक दो बार ऐसे ही वह उन दोनों को साथ देख कर लड़ाई कर बैठा। आखिर में लड़की के माँ-बाप को भनक लगी पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करा दी। पुलिसने उस कॉलेजियन को बुलाकर बहुत मारा और जामिन ले कर छोड़ दिया।

अब उस कॉलेजियन लडके के रोष का ठिकाना नहीं- उसने सोचा कि लडकी को ही मार डाला जाय। उसने लडकी पर दिन दहाडे हमला कर दिया परन्तु निष्फल रहा। पुलिस केस में उसे एक महिने की सजा हो गई। जैल में सलाखों के पीछे कुछ ही सप्ताह में वह अत्यंत द्वेष व असंतोष तथा विवशता के कारण आधा पागल हो गया। बहकी बहकी बातें करता और सड़क पर सनक पन में घूमता फिरता।

लोग बाग उसकी इस दशा को किसी अज्ञान शक्ति का प्रकोप मान बैठे। वास्तव में यह द्वेष प्रक्रिया थी।

दूसरा विचार - (आंतरश्रोत- द्वेष) :- एक असंस्कारी व्यक्ति एक गाँव में था। उसमें द्वेष की मात्रा बहुत थी। घर की हालत पहले बहुत अच्छी थी। परन्तु एक तरफ स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जमींदारी प्रथा का उन्मूलन और दूसरी तरफ उसके परिवार में सभी भाईयों के अलग अलग हो जाने के कारण परिवार की आर्थिक स्थिति बिगडती गई। बचपन में जमींदारी का शान शौक उस व्यक्ति में अभी भी बनी रही। शिक्षा व संस्कार अच्छा न होंने से उसमें मादक वस्तु आदि के सेवन की आदत पड़ गई। संयोग वश उसे उसके बूआ के घर का सोने चाँदी के जेवर हाथ लग गया। अब उसका दिमाग सातवें आकाश पर पहुँच गया। बीस बाईस वर्ष की उम्र किसी बड़े बूढे का प्रतिबंध नहीं, व्यसनमय जीवन आदि कारणों से वह व्यक्ति आवारा गर्दी की चरम सीमा पर पहुँच गया। उसमें द्वेष इतना था कि किसी अच्छे खाते पीते व्यक्ति को वह देख नहीं सकता था।

आखिर में उसके हाथ लगे सोना चाँदी तीन चार वर्ष में समाप्त हो गया

और अब वह पैसे के लिये मोहताज हो गया। उधर गाँव के साथी लडके अपनी शिक्षा समाप्त कर किसी न किसी व्यवसाय या नौकरी में लगने लगे और प्रतिष्ठा भरा जीवन बिताने लगे।

साथियों की उन्नति को देख, इस भ्रष्ट व्यक्ति के द्वेष का ठिकाना न रहा। परन्तु विवश था। सिवाय झगड़े व बुराई करने या कोसने के और वह कुछ कर नही सकता था। वह अंदर ही अंदर घुटता रहता।

आखिर अंदर ही अंदर इतना झुलस गया कि उसका मन विकृत हो गया और वह बहकी–बहकी बातें करने लगा उसकी दशा न तो पागल की थी न तो स्वस्थ बुद्धि की।

उसके घर वाले अज्ञानता में कहने लगे कि किसी ने कुछ कर दिया है। किसीने मैली विद्या का प्रयोग कर दिया है आदि। वास्तव में यह द्वेष प्रक्रिया थी।

तीसरा विचार – (अंतर श्रोत प्रक्रिया– द्वेष) :– एक ठेकेदार है, भवन इत्यादि बनाने का वह ठेका लिया करता है। उसका कारोबार काफी बड़ा है कई लाख रुपया प्रतिवर्ष वह कमाता है। उसके सामने एक नया ठेकेदार आ गया और जहाँ कहीं भी आवश्यकता होती वह नया ठेकेदार भी अपना टेन्डर (निविदा) भर देता। उसके कारण उस बडे ठेकेदार को ठेका प्राप्त करने के लिये सस्ते दर पर काम करना पड़ गया। कभी कभी तो किसी ठेके में हानि भी होने लगी। उसके कारण उस बडे ठेकेदार के मन में छोटे ठेकेदार के प्रति बडा द्वेष हो गया। परन्तु वह कुछ बदला नहीं ले पाता था। छोटे ठेकेदार अपने आप में मस्त अपने छोटे मोटे काम कर, थोडा बहुत कमा लेता था। और बडे काम की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करता रहता था। उस प्रतिस्पर्धा के कारण वह बडा ठेकेदार रातदिन द्वेषाग्नि में झुलसने लगा। इस बीच एक साधारण ठेका रेलवे के एक रूम बनाने का उस छोटे ठेकेदार को मिल गया। बस उस बात का इतना बड़ा आघात उस बडे ठेकेदार को लगा कि वह बीमार हो गया। उसे भूख नहीं लगती, सरदर्द होने लगा वह निर्बल हो गया। उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो गया वह कभी कभी अस्लील शब्द बोलने लग गया। उसी मनोदशा में एक दो टेन्डर वह भर नहीं पाया। उसके धन्धे में थोडी मंदी आ गई। और वह चिन्ता तथा द्वेष में अन्दर ही अन्दर घुटने लगा। उसे कुछ अच्छा नहीं लगता और उसका अब स्वभाव भी बडा चिड़चिड़ा हो गया और बात बात में अपने कर्मचारियों पर तथा पत्नी आदि पर भी बरस पड़ता। साथ ही साथ उसका स्वास्थ्य भी गिर गया। उसकी दशा को भी अज्ञानता वश उसके परिवार के लोग किसी अज्ञात शक्ति का

प्रकोप मान बैठे।

चौथा विचार – (अंतरश्रोत प्रक्रिया–द्वेष) :– एक रेलवे के कारखाने में एक फीटर नौकरी करता था। वह अक्सर शाम को ड्यूटी पर से एक घंटे पहले चार बजे ही भाग जाया करता था। कभी कभी उसके सुपरवाइजर को उसके भाग जाने का पता लग जाता तो उसे डाँट खानी पड़ती। उस फीटर को शंका हो गई कि उसका साथी फीटर उसकी चुगली कर देता है। और इसी कारण उसके मन में साथी फीटर के प्रति बडा द्वेष हो गया। वह कह नही पाता था परन्तु अंदर ही अंदर जलने लगा। एक बार उसने एक गुन्डे को भाडे पर रखकर अपने साथी को पिटवा दिया। वह गुन्डा पकड़ा गया और बयान दे दिया कि उसने पैसा खा कर मारा है। अब उस बदमाश फीटर के प्रति कानूनी कार्यवाही की गई और उसे नौकरी से निकाल दिया गया। उसके घर की दशा बहुत बिगड गई। बच्चे भूखे रहने लगे। नौकरी चली गई। उसका साथी आराम से खाता कमाता रहा।अब वह बदमाश व्यक्ति इतना टूटा और विकृत मन हुआ कि उसका मानसिक संतुलन खो बैठा। और वह बहका बहका सा रहने लगा। घर पर मारपीट गाली गलोंच करता रहता। किसी की कुछ नही सुनता था। अपने ही आवेश में रहता। वह न तो पागल है ना ही स्वस्थ मन। उसकी इस व्यग्रता को लोग किसी अज्ञात शक्ति का प्रकोप मान गये।

पाँचवा विचार (अंतर प्रक्रिया–द्वेष) :– जौनपुर (यू.पी.) के एक गाँव में एक ही खानदान के दो परिवार अलग–अलग रहते थे। उनके घर के पास एक लगभग आधे बीघे का खेत किसी तीसरे परिवार का था। वह खेत बिकाऊँ था। दोनों परिवार वर्षों से ताक लगाकर बैठे थे कि कब अवसर मिले और वह उस खेत को ख़रीद लें।

एक परिवारने खेत के मालिक को कुछ कर्ज दे रखा था और उसे हमेशा सहारा देता रहता था। केवल उसी अभिप्राय से कि उसका खेत वह खरीद लेगा। जब अवसर आया तो संयोग से उस के पास पैसा नहीं था और खेत दूसरे परिवारने खरीद लिया। उस बात का उस प्रथम परिवार की महिला पर इतना आघात लगा कि वह बीमार हो गई। उसके द्वेष का ठिकाना न रहा यदि उसका बस चलता तो वह मारामारी या खून खराबा भी कर बैठती। परन्तु वह विवश हो अंदर ही अंदर द्वेषाग्नि में घुटने लगी। उसकी मनोदशा ऐसी विकृत हुई कि वह कभी कभी रात को उठकर गालियाँ बकती रहती। उसका स्वास्थ्य एकदम गिर गया और बाद में उसके

हाथ पाँव खिंचने लग गये। उसे दौरा पड़ने लगा। उसकी आँखे टंग जाती और वह जोर जोर से चीख मारती चार- पाँच व्यक्ति उसे पकड़ लेते और लगभग आधे घण्टे बाद वह साधारण स्थिति में हो पाती। यह अंतर मन में द्वेष प्रक्रिया का उग्र स्वरूप था। जिसे ना समझीमें लोगबाग भूतप्रेत समझ बैठे थे। शनैः शनैः वह अपने आप स्वस्थ हो गई किन्तु वृद्धापन समय से पूर्व ही झलकने लगा।

(५) अभिनिवेश (अंतर प्रक्रिया- अभिनिवेश)

मनुष्य के मन में संस्कारवत् अथवा स्वभावतः जो जन्म जात भय छीपा होता है उसे अभिनिवेश क्लेश कहा जाता है।

कुछ गुण दोष मनुष्य, के अंदर स्वतः उभरते हैं। उसका आधार पूर्व जन्मों के कर्म होते हैं। बच्चों में साहस भय, निर्दयता, सहनशीलता आदि प्रारब्ध से ही झलकने लगते हैं। ये सारे गुणदोष जीव के साथ जन्म जन्मान्तर तक चलते रहते हैं तथा घटते बढ़ते उत्पन्न होते तथा मिटते रहते हैं।

उन जन्मजात गुणदोषों का वर्तमान जीवन पर प्रभाव पड़ता है। वर्तमान जीवन में कोई गुण या अवगुण व्यक्ति के जीवन के आधार पर बढ भी सकता है और घट भी सकता है।

मृत्यु का भय सभी मनुष्यों को स्वभावतः होता है। परन्तु कुछ लोग ज्ञान से उस भय को कम करते हैं या मिटा देते हैं। और कुछ लोग अन्य क्लेशों के प्रभाव वश मृत्यु भय को पराजित कर देते है। और स्वयं मृत्यु का आव्हाहन कर लेते है। आये दिन बहुधा आत्महत्या के समाचार आते हैं, वे सब अन्य क्लेशों के प्रभाव में आकर मृत्यु भय को पराजित कर देने की ही घटनायें हैं।

यह सभी घटनायें अथवा दुर्घटनायें अभिनिवेश नामक क्लेश के अन्तर्गत आती हैं इसका कुछ उग्र स्वरूप भी होता है।

कोई व्यक्ति पिछले जन्म में जल में डूबकर मृत्यु को प्राप्त हुआ होता है। वह वर्तमान जीवन में, नदी, कील, सागर आदि जलाशयों को देखकर भयभीत हो जाता है।

ऐसी घटना जब किसी बच्चे के साथ होती है तो वह बुहधा नाव इत्यादि में बैठने से इनकार करता है। जब उसे उसके माँ बाप या अन्य संरक्षक उसे गोद

मे लेकर हठात नाव में बैठा देते हैं तो वह बच्चा मारे भय के व्याकुल हो जाता है। वह चिपक कर मुह छिपाकर बैठ जाता है। उसके मुँहकी आकृति विकृत हो गई होती है। उसके हृदय पर बहुत बडा आघात पहुँचता है। नाव से उतर जाने के बाद भी काफी समय तक उसकी मनः स्थिति बिगडी रह जाती है और ज्वर इत्यादि से भी पीडित हो जाता है, फिर शनैः शनैः ठीक होता है।

इसी तरह पूर्व जन्म मे अग्नि से जलकर मृत्यु को प्राप्त मनुष्य वर्तमान जीवन में अग्नि से डर जाते हैं।

मूल अभिप्राय यह है कि कष्टपूर्ण मृत्यु का गहरा प्रभाव जीव के सूक्ष्म शरीर पर पड़ा रहता है जो वर्तमान जीवन में समय व परिस्थिति पाकर उभर पडता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ऐसे व्यक्ति रोगिष्ट होते हैं। इस प्रकार की मानसिक अस्वस्थता के अनेकों स्वरूप हो सकते हैं जो मनोवैज्ञानिक ढंग से खोजा जा सकता है। परन्तु अज्ञानी अंधश्रद्धालु लोग देवी देवता के प्रकोप को मान बैठते हैं।

एक ही प्रकार की परिस्थिति में विभिन्न व्यक्तिओं पर विभिन्न प्रतिक्रियायें हो सकती हैं। यह सब व्यक्ति के पूर्व जन्म तथा वर्तमान जीवन के ज्ञान, अनुभव, आदत एवं परिस्थिति पर आधारित होती है।

पूर्व जन्मों के संस्कारों एवं स्मृतियों के फल स्वरूप उभरे प्रभाव व प्रतिक्रिया के प्रकार व प्रचंडता का कोई अनुमान नही। भय, आनन्द, क्रोध, गम्भीरता, इत्यादि अचानक किसी किसी व्यक्ति में थोडी देर के लिये आ जाता है। और अचानक ही चला जाता है। मनुष्य की बात, व्यवहार अप्रासंगिक तथा अव्यवहारिक, हो उठता है। उसकी इस दशा को किसी पारलौकिक शक्ति के प्रकोप का फल मान लिया जाता है।

प्रथम विचार (अधिनिवेश क्लेश) :– श्री पाचोटिया नामक महेसाणा गुजरात का एक दाँत का प्रख्यात एवं प्रतिष्ठित डाक्टर लगभग छह माह मुसलमान फकीर बन जाता था और छह माह हिन्दू रहता था, जब वे मुसलमान होते थे तो वर्तमान जीवन को भूल ही जाते थे। कपड़े इत्यादि उतार फेंकते थे। केवल एक चढ्ढी (अंडवीयर) पहने सर्दी, गरमी व वर्षा में घूमते फिरते थे। गले में तरह तरह की मालायें व-रसी इत्यादि लटकाये फिरते थे। कुरान शरीफ की आयतें बोलते थे। दरगाह इत्यादि में रहते थे। घर पर ऐसे ही कभी पहुँच जाया करते थे। लेखक उनसे बहुत कुछ बातें करता था। वे कभी वेरावल (गुजरात) की कभी अमदावाद की ओर कभी अजमेर

की बातें किया करते थे।

सन् १९७५-७६ में उन पर मुसलमानियत सवार हुई और वे कुछ दिन महेसाणा अपनी धुन में घूमते रहे। लेखक ने उनका मनोवैज्ञानिक स्वाध्याय प्रारम्भ किया परन्तु वे अचानक गायब हो गये और कभी नहीं लौटे।

लोग उन्हें पागल कहने लगते परन्तु वे पागल नहीं थे। अच्छी तरह बाते करते थे। वास्तव में यह अभिनिवेश प्रक्रिया थी। जब पूर्व जन्म के अनुभव का प्रबल उदय होता था तो वे वर्तमान को समुचित याद नहीं रख पाते थे। ना ही यह किसी पीर फकीर या भूतप्रेत का प्रकोप था।

दूसरा विचार (अभिनिवेश प्रक्रिया) :- एक दुर्बल मन का व्यक्ति है। अंधश्रद्धा तथा अंधविश्वास से परिपूर्ण है। वह ज्वर से पीडित हो गया। ज्वर की अधिकता में वह कुछ बड़बड़ाने लगता था। लोग इसे भूतप्रेत का प्रकोप मानते थे। एक ओझा (भूतप्रेतका इलाज करनेवाला) को बुलाया गया। उसने कहा उनको तो किसी प्रबल भूतने पकड़ा है। बहुत ही घातक स्थिति है बच जाय तो तकदीर अच्छी होगी। बेचारा व्यक्ति उसे सुनकर मृत्यु के डर से घबरा गया। उसकी दशा ओर बिगड़ गई और उसे दस्त होने लगी। अपने बच्चों व पत्नी से लिपट कर खाट पर रोता। देहात में कोई डाक्टर इत्यादि भी नहीं मिलते। अनपढ अज्ञानी पत्नी यथा ज्ञान पूजा पाठ मान्यता आदि करती। वह व्यक्ति आखिर मर गया। लोग उसे भूतप्रेत का शिकार मान गये। वास्तव में यह ज्वर था जो मृत्यु के जन्म जात भय की तीव्रता में जान ले ली। यह अभिनिवेश प्रक्रिया है। यदि वह मृत्यु से डरा नहीं होता और हिम्मत रखता तो अवश्य स्वस्थ हो जाता।

तीसरा विचार (अभिनिवेश प्रक्रिया) : एक मंदबुद्धि का अत्यंत डरपोक आदमी सायं बाजार से अपने घर को लौट रहा था। अकेला था और रास्ते में कुछ बगीचा व नाले खोले पडते थे। गाँव के सूमसाम वातावरण में वह अकेले अंधेरे में जब जा रहा था तो सामने से कुछ व्यक्तिओं को उसने आते देखा। बस वह एकदम डर गया। उसे लगा कि अब ये चोर उसे मार डालेंगे। वह इतना अधिक डरा कि खडा न रह सका लडखडा कर बैठ गया। वे आदमी उसे वहाँ अनायास गिड़गिड़ाते देखें तो कुछ समझ न सके आखिर में वे लोग उसे उठा कर ले गये और बगीचा के पार थोडी दूर पर उसके गाँव में छोड़ कर चले गये। गाँववालोने उसे उसके घर पहुँचा दिया। प्रातः वह बिमार पड़ा दिखलाई दिया। उसे ज्वर हो आया था। वह सब

को कहता था कि कई चोर बगीचे में घेर लिये थे।

शनैः शनैः वह ठीक हुआ। परन्तु उसे लोगोंने भूतप्रेत का प्रकोप माना।

चौथा विचार (अभिनिवेश) :– एक दुर्बल मनोबल का अंध विश्वासी व्यक्ति था। उसके खेत में एक आम का पेड़ था जो सूख गया। थोडे दिन बाद उसकी एक दूध देती गाय मर गई। किसी पंडित ने कह दिया कि बहुत अशुभ हुआ है और सर्वनाश का प्रतिक है। उस व्यक्तिके मन में बैठ गया– उसे विश्वास हो गया कि अब वह मर जायेगा। उसे अब न खाना अच्छा लगता न पीना। अंदर ही अंदर वह मृत्यु के डर से घुटने लगा। उसे लगता कि अब तो वह थोडे दिन का महेमान है। सब कुछ छुट जायेगा अब वह अपनी पत्नी व बच्चों से बहुत प्यार करने लगा। गाँव वालों से बंधु बाँधव से भी बडे स्नेह से मिलता व बातें करता। उसमें अचानक इस परिवर्तन का रहस्य किसी को पता न चला। वह मन ही मन मृत्यु की ओर बढ ता गया। उसकी मनोदशा विकृत होती गई वह दुर्बल जरजर हो गया। लोग बाग किसी देव दानव के प्रकोप समझ पूजापाठ करवाने लगे। भूतप्रेत का भी इलाज हुआ परन्तु उसे कुछ असर न हुआ। अत्यंत निर्बलता के कारण वह अब उठ बैठ भी नही सकता था। लगभग एक वर्ष इसी तरह चलता रहा और अंत में उसे कालरा अतिसार हो गया और वह मर गया। इसे भूतप्रेत का प्रकोप माना गया। गाँववाले उसे जलाने के बदले नदी में फेंक आये और पंडितो द्वारा कुछ कर्म कान्ड करवाया गया। जब कि यह अभिनिवेश प्रक्रिया थी।

कोई भी व्यक्ति जब अचानक स्वयं के विषय में जानता है तो उसे बहुत बडा मानसिक आघात लगता है, उसके हृदय पर बहुत बडा झटका पड़ता है। वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है। और कई बार निरर्थक व अप्रासंगिक वात व्यवहार करने लगता है। जिसे लोग बाग भूतप्रेत जादू टोना समझ जाते हैं।

स्वयं की मृत्यु का डर सभी प्राणियों में न्युनाधिक मात्रा में होता है। जो उसे पूर्व जन्म से प्राप्त हुआ होता है। जितनी कष्टदायी यां करुण मृत्यु उसे प्राप्त हुई होती है उतना ही अधिक मृत्युभय वर्तमान जीवन में सताता है। इस अंतरंग प्रक्रिया को अभिनिवेश कहते हैं।

निद्रावृत्ति

चित्त में ज्ञान के सर्वथा अभाव की अनुभूति को निद्रावृति कहा गया है। ब्रह्मर्षि पतंजलि ने कहा है–

"अभाव प्रत्यायालम्बना वृत्ति निद्रा।। १/१०।।

अर्थात् अभाव की प्रतिति का आलम्बन आश्रय करने वाली चित्तवृत्ति को निद्रा कही जाती है।

जब जीव तमोगुणकी प्रधानता के साथ समस्त ऐन्द्रिक विषयों से निवृत होकर के अभावोनुभव को प्राप्त होता है तो उस दशा को निद्रावस्था कहा जाता है, उस दशा में सभी कर्मेन्द्रियाँयें तथा ज्ञानेन्द्रियाँयें निष्क्रिय अथवा सुषुप्त रहती हैं। निद्रावृति जीव के लिये ईश्वरी कृपा है। ईश्वरने निद्रावृति प्रदान करने की कृपा न की होती तो मनुष्य में मनुष्यता एवं ज्ञान में कर्मण्यता न रह पाती।

इस ईश्वर प्रदत्त वृत्ति में संयम् करना। इसको पोषित सेवित एवं आचरित रखना प्रत्येक मनुष्य का सर्वोत्तम एवं महत्वतम कर्म है। जो मनुष्य इस वृत्ति में रचा पचा न रहा और इसका दुरुपयोग अथवा अनुपयोग किया वह अव्यवस्थित अवश्य हुआ।

चिंता, आतुरता, आक्रोश तथा रोग आदि निद्रावृत्ति के शत्रु हैं। इन शत्रुओं पर विजय पाना निद्रावृति को संरक्षित रखना है।

मनुष्य का अंतःकरण निद्रा के विना कभी भी स्वस्थ नहीं रह सकता। अनिंद्रा का सीधा प्रभाव बुद्धि पर पडता है निद्रा के बिना बुद्धि अस्वस्थ एवं व्यग्र हो उठती है।

नींद का न आना एक भयंकर परिस्थिति है। उसके कारण मन विचलित एवं बुद्धि व्यग्र हो जाती है। इस व्यग्रता के कारण मनुष्य असाधारण तथा अप्रासंगिक बात व्यवहार करने लगता है। समाज व परिवार में वह अलग पड़ जाता है। उसकी इस दशा का अनजानेमें लोग भूतप्रेत जादू टोना इत्यादि मान बैठते है।

ऐसे विकृत निंद्र वृति के लोगों का कोई एक प्रकार का बात व्यवहार नही होता। अनेकों लोग एक ही परिस्थिति में विभिन्न प्रकार के व्यवहार कर सकते है। यह सब व्यक्ति के मनोबल एवं संस्कार के उपर निर्भर करता हैं।

निंद्रा हीन व्यक्ति कभी कभी एकाक मिनट के लिये झपकी खाकर झपट

पडता है और फिर निंद्राहीन हो जाता है। बात चीत के दौरान में कभी कभी अचानक झपट उठता है। जमहाई खाता है। शरीर को तोड़ मरोड़ या खींचतान कर लिया करता है। कई बार दूसरों को पता नहीं चलता है और वह मिनट आधा मिनट सो लेता है। अन्य लोग समझते हैं कि वह बातों को गौर से सुन रहा है। परन्तु वह कुछ सुन ही नहीं रहता है।

ऐसी–ऐसी विशेष परिस्थितियाँ आती है जिसका मनोवैज्ञानिक समाधान ढूंढा जा सकता है। परन्तु अज्ञानता के कारण ऐसी घटनाओको भूतप्रेत जादू– टोना मान लिया जाता है।

कुछ लोग नींद में बोलते है, बड़बड़ाते है उठते बैठते हैं और फिर सो जाते हैं।

कुछ प्रबल संस्कार निंद्रावस्था में भी अपना प्रभाव डाल देते हैं और सुषुप्त व्यक्ति अचानक जागृतावस्था में आ जाता है।

मेरा एक मित्र वी.पी. पंडया, रेलवे के परमिनेन्ट वे इन्स्पेक्टर था मेरे साथ सुरेन्द्रनगर (सौराष्ट्र) में था। हम दोनों बहुधा एक साथ रात या दिन में ट्रेन के सफर करते थे। जब हम रात को सोते हुए सफर करते थे। तब ट्रेन में जब कभी उसकी नींद खुलती वह झट बोल पड़ता अरे अमुक स्टेशन आ गया। और वास्तव में उसी स्टेशन से ट्रेन पसार होती रहती थी। कई बार– वह अचानक उठता और कहता अमुक स्टेशन अब आने ही वाला है और वहाँ उसे उत्तर कर किसी को कुछ आदेश देना है। चलती ट्रेन के नीचे पाटिये की चाल व उसकी आवाज तथा भैगोलिक दशा से उभरती विशिष्ट ध्वनि का इतना प्रबल अभ्यास उसे हो गया था कि उसे बिना देखें सोते हुए भी पता चल जाता था कि उस समय ट्रेन किस जगह से दौड रही है।

कहने का अभिप्राय यह है कि मानव मन पर प्रकृत्ति के हर परिस्थिति का कुछ न कुछ प्रभाव पडता ही है। ईस प्रक्रिया में मनुष्य कब कैसा व्यहार कर दे कहना कठिन है। किन्तु इतना अवश्य है कि मनुष्य के प्रत्येक बात व्यवहार के पीछे कोई न कोई वैज्ञानिक कारण अवश्य होता है जो अपने आप में जटिल होता है और बहुधा अनजाना ही रह जाता है। रहस्य को लोग अज्ञात शक्ति मान बैठते हैं।

पहला विचार :– मेरे एक सम्बन्धी मेरे भतीजे के स्वसुर जोनपुर टी. डी. कोलेज में संगीत टीचर थे। उन्होंने बताया कि एक बार उनके यहाँ किसी प्रसंग में एक उनका दूर का सम्बन्धी आया और अन्य लोगों के पास ही वह एक पलंग पर

बाहर खुले में सोया। सोते समय बगल के व्यक्ति को उसने बताया कि वह मैं नींद में कभी कभी उठ कर इधरउधर घूमने लगता हूँ। लोगोंने कहा कोई बात नहीं आप जो चाहे वह करें। रात को वह तीन बजे उठा और बगल में सोये व्यक्ति को लगा मुक्का तमाचा से मारने वह सोया व्यक्ति भी उठ गया और भिड़ गया/मल्लयुद्ध हो गया, अन्य लोग उठकर दौड़े और दोनों को पकड़ लिये इतने में उसे होश आ गया वह जाग उठा और सीधे अपने खाट पर जाकर सो गया और धीरे से जैसे कुछ हुआ ही न हो। कहा कि अरेरामु, देखो कुस्ती हो गई। बस फिर वह अन्य लोग का हंस हंस के पेट फूल गया। उस व्यक्तिको जगाया गया वह शीघ्र ही उठ गया और बड़े विनम्र स्वरमें कहने लगा। मुझे नींद में उठकर कुछ काम करने की आदत है। लोगों ने एक बार फिर जोर का ठहाका लगाया और फिर उस रात कोई सो न पाया.

दूसरा विचार : एक दुबला पतला अनपढ़ गाँव का व्यक्ति है। उसे नींद आना बंद हो गया। वह बहुत परेशान था। उसका स्वभाव शनैः शनैः चिड़चिड़ा हो गया। ओर दशा बिगड़ती गई, आखिर में वह पागल हो गया। लोग उसे भूतप्रेत का शिकार मान बैठे। क्योंकि अक्सर वह एक कुआँ पर जाकर बैठा रहता था। जिसमें कभी कोई व्यक्ति गिर कर मर गया था।

तीसरा विचार : गाँव का एक व्यक्ति है। वह एक वार बीमार पड़ा। तीव्र ज्वर में न जाने क्या क्या वह बड़बड़ाता। लगभग एक माह बीमार रहा और फिर ठीक हुआ किन्तु अब उसे नींद न आने की व्याधिने घेर लिया। इस कारण उसका स्वास्थ्य गिरता गया ओर मनोबल क्षीण होता गया। बात–बात में वह कभी रो पड़ता कभी आग बबुला हो जाता। भोजन भी वह नहीं कर पाता था। लगभग दो वर्ष वह लड़खड़ाता रहा और चल वसा।

वृत्ति स्मृति (अंतरंग प्रक्रिया) : महर्षि पातंजलीजीने चित्तकी पांच वृत्तिओंका वर्णन कीया है। जो की मनुष्य के दुःख को परिस्थितियों के अनुसार उत्पन्न करती है। और फीर उनको नष्ट भी करती है।

ये पांच वृत्तियां है। (१) प्रमाण (२) विपर्यय (३) विकल्प (४) निन्द्रा (५) स्मृति। जिनसे कष्ट उत्पन्न और नष्ट होते हैं।

देखीये : प्रमाण विपर्यय विकल्प निन्द्रा स्मृतयः। (योगदर्शन – १/६)

भूतकालके अनुभव किये गये विषयका पुनः उभार आना स्मृति वृत्ति है। स्मृति के साथ उसका विषय और ज्ञान दोनों ही उदीत हो उठते है। जब मनुष्य की सोइ हुई स्मृति जागती है तब वह उस स्मृति के प्रभाव में हो जाता है। वह भूतकाल

या पिछले जन्म की स्मृति पर वर्तमान परिस्थिती में सोच विचार करने लगता है। स्मृति विषयनुकुल वह करूणा सुखद, दुखद, अथवा तामसी भावों से प्रभावित हो उठता है। वर्तमान जीवन की मानसिक एवं शारीरिक निर्बलता तथा उसका स्वभाव इस विषयमें बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

यदी मनुष्य तामसी स्वभावका है और उसकी स्मृतिका विषय भी तामसी है तो ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति बैठे बैठे मात्र स्मृति के कारण गुस्से से तमतमा उठंता है और उस असाधारण अवस्था में असंदर्भीक बातें या कार्य कर बैठता है।

स्वभावतः दयावान मनुष्य की स्मृति में जब कीसी करूण घटना आ जाती है तब वह कइ बार बैठे बैठे रोने लग जाता है। करूणावश उसका गला रुंघ जाता है। देखने वालों को कुछ पता नहीं चलता ? घर वाले पहेले अवाक रह जात है की घरमें बिना कीसी दुःखद प्रसंग के वह रोने लगा। बादमें लोग उसके स्वभावसे परिचित हो जाते है। और फीर उसके इस प्रकार के रोने से चकित नहीं होते। परंतु कइ बार इसे भी कीसी देव अथवा दानवका प्रकोप मान लेते है।

स्मृति के कारण मनुष्य के हावभावमें परिवर्तन के अनेके स्वढप हो सकते है। इसका संपूर्ण वर्णन तो अत्यंत कठीन है। किन्तु स्मृतिकी प्रतिक्रिया निश्चित है। और इस प्रतिक्रिया का उग्र या मंद रुप जीव के जन्म जन्मांतर के संस्कार या वर्तमान जीवन की परिस्थितियां तथा उसकी अपनी मानसिक दशा पर निर्भर करती है।

(१) प्रथम विचार (स्मृति–वृत्ति अं. प्र.) : मेरा एक मित्र था श्री नगीनदास जो रेल्वेमें मेरे साथ तो करी करता था। वह सुरेन्द्रनगर में मशीन शोप चार्जमेन था। वह स्मृतिवृत्ति के कारण अनायास ही कभी कभी अकेले अपने ओफिसमें बैठे बैठे रोने लगता था। कीसी कीसी दीन हसने लगता था। पूछने पर वह अपनी स्मृति का बयान भी उसी भाव में हंसते हंसते या तो रोते रोते जाता था। सुरेन्द्रनगर लोको शेडमें सन १९५६ में एक वोटर कोलम को लगाते समय एक दुर्घटना हो गई। वोटर कोलम से दबकर एक मजूर मर गया। मृत मजूर की पत्नी या बचों को रोते उसने देखलीया था। उस करूण घटना का उसके हृदय पटल पर बडा आघात लगा। जब कभी भी उसे वह घटना याद आ जाती थी तब वह रो पडता था।

(२) दुसरा बीचार (स्मृत–वृत्ति अं. प्र.) : मेरी चाची जोनपुर जीलेके अमहा गांव (%उ.) में रहती थी। उनका द्वितीय पुत्र श्री हरीश्चन्द्र जोरसे रोती रोग से सन

व्याकुल हो जाती थी। और बूरी तरह से बयान करते हुए जोर जो से रोती थी।

यह क्रम, घटना के लगभग १० वर्ष बाद तक, जब तक वह स्वयं मर नहीं गइ, चलता रहा।

(३) तीसरा विचार (स्मृति, वृत्ति अं. प्र.) : मेरे छोटे भाई श्री सूर्यनारायणकी धर्म पत्नी बडे ही धार्मिक विचारोंकी है। वे बंगालप्रांतमें चितरंजन में रेल्वे कोलोनी में रहती थी। एकबार कीसी पंडित ने बतादीया की मेरे भाइ श्री सूर्यनारणकी आयु कम है। बस इतनी सी बात के कारण उनकी पत्नी बहोत ही दुःखी हो गई। पन्डित की यह बात जब कभी भी उनको याद आ जाती थी तब वह गंभीर एवं अशांत हो जाती थी। घटना लगभग सन – १९६४ की है।

उन्हीं दीनों में गुजरात से वहाँ गया और मैंने अनायास ही कह दीया की तुम्हारी आयु बहुत लंबी है। सारा परिवार खुशखुशाल हो गया। मेराभाई अब रीटायर्ड हो गया। उसकी आयु इस समय लगभग ६० वर्ष की हो गइ है। फीर भी उस पंडित की उस मिथ्या बात को याद करके अभी भी उनकी पत्नी डर जाती है। यदी मेरेभाइ का सरभी दर्द करता है। तो वह अत्यंत चिंतित हो जाती है इसमें स्मृतिवृत्ति काम करती है।

(४) चौथा विचार (स्मृति वृत्ति अं. प्र.) : कभी कभी व्यक्ति की स्मरण शक्ति क्षीण हो जाती है। ऐसी अवस्थामें भी व्यक्ति असाधारण या अप्रासंगिक अथवा अनापेक्षित व्यवहार कर बैठता है। और इस दशा में भी लोगबाग, दानव अथवा देव प्रकोपमान बैठते है।

(५) पांचमा बिचार (स्मृति वृति अ. प्र.) : एक व्यक्ति है। बुढा हो गया है। उसकी स्मरण शक्ति कमजोर हो गइ है। उसकी पत्नी उसे बाजार भेजती है, कुछ सामान खरीदकर लाने के लीसे। वह बाजार जाता है। परंतु भूल जाता है। की उसे क्या खरीदना था। उसे भेजा जाता है कीसी व्यक्ति विशेष को बुलाने के लीए। वह जाता है। परंतु जिस व्यक्ति को बुलाना है उसका नाम ही भूल जाता है। दो या एक दीन पहेले उसका प्रोग्राम कीसी के घर पहोंचने का बनता है। परंतु उस दीन वह भूल जाता है की उसे जाना था। इस प्रकार के मंद स्मरण शक्ति के लोगों को भी कई बार गलत समज लीया जाता है। जब की इसे भी स्मृति वृति की प्रक्रिया ही समजनी चाहीए।

(६) छठ्ठा बिचार (स्मृति वृत्ति – अं. प्र.) : मनुष्य अपनी एषणाओं अथवा

वासनाओं के वशीभूत हो कर कीतने ही पाप व अत्याचार करता है। उस के कारण उसे कई बार अपमानित व तिरस्क्रारीत भी होना पडता है। इस के साथ साथ उसकी शक्तियां घटती है। साहस कम होता है। और वह साधारण जीवन व्यतीत करता है। परंतु कइबार उसे अपने कर्म अचानक याद आ जाते है। और वह अंदर ही अंदर चोंक उठता है। उसकी अंतरात्म में स्वयं के प्रति हीन भावना उत्पन्न हो जाती है। और उसके जीवन में परिवर्तन आ जाता है। वह निस्तेज, हतप्रभ और हीनता के जीवन जीता है। स्मृति वृति के इस प्रभाव को भी ना समजीमें अनपढ गंवार लोग कीसी अज्ञात शक्ति का प्रकोप मान बैठते है।

चित्त की पाँच वृत्तियों (प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा तथा स्मृति) में से यहाँ अंतर प्रक्रिया में केवल निद्रा एवं स्मृति वृत्ति को ही प्रासंगिक मानकर विचार किया गया है और अन्य वृत्तियाँ छोड दी गई है। विपर्यय वृत्तिको बाह्य प्रक्रिया के अंतर्गत बताया जायेगा।

यहाँ जीवन को प्रभावित करने वाले सभी अंतरंग श्रोत अर्थात् चित्त के विक्षेप, चित्त के विध्न, चित्त के क्लेश तथा चित्त की वृत्तियों की चर्चा समाप्त होती है और अब उसके बाद बहिरंग श्रोतों, जिससे मानव जीवन प्रभवित होता है का वर्णन होगा।

मानसिक प्रक्रिया "बहिरंग श्रोत"

जीवन में होने वाली उन प्रक्रियाओं तथा प्रतिक्रयाओं का वर्णन जो कि अपने अंदर के ही श्रोतों से उभरती हैं, तक किया गया है। अब उन प्रक्रियाओं एवं प्रतिक्रयाओं के विषयों में चर्चा करेंगे जो बाहरी श्रोतों से उभरती हैं और जीवन को प्रभावित करती है।

विश्‍व में जो कुछ भी है वह सभी जीवात्मा के सदुपयोग के लिये ही है। जगत् के पदार्थों को समझने बूझने के लिये, ग्रहण करने के लिये तथा उपयोग करने के लिये जीव को पाँच ज्ञानेन्द्रियाँये तथा पाँच कर्मेन्द्रियें प्राप्त हैं। जो निम्न प्रकार हैं।

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ– (१) चक्षु :– जो दृष्यमान पदार्थों का अवलोकन कर सकता है।

(२) **कर्ण :–** जो शब्दों को सुन सकता है।

(३) **घ्राण –** जो गन्ध का ग्रहण कर सकता है।

(४) **जिह्वा–** जो स्वाद को ग्रहण कर सकता है।

(५) त्वचा – जो स्पर्श करके वस्तुका ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

पाँच कर्मेन्द्रियाँ –

(१) **हाथ**– जिससे मनुष्य कर्म करता है।

(२) **पाँव**– जिससे मनुष्य चलता फिरता है।

(३) **मुख** – जिससे बातचीत करता है एवं भोजन करता है।

(४) **गुदा** – जिससे मनुष्य शौच कार्य करता है।

(५) **जननेन्द्रिय** – जिससे मनुष्य मूत्र त्याग एवं गर्भाधान करता है।

इस के अतिरिक्त चित्त होता है जो वृत्तिको धारण करता है।

ईश्वरी कार्य सर्वथा एवं सर्वदा सुनिश्चित तथा सुनियोजित है। उसके कार्य का सम्पूर्ण ज्ञान मानव बुद्धि में समा नही सकता।

मनुष्य अपनी पाँच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जिन पाँच भौतिक गुणों को ग्रहण करता है उनके अतिरिक्त विश्व में कुछ होता भी नहीं।

जो पदार्थ सृष्टि में होते हैं उन्हीं का प्रभाव जीवन पर पड सकता है। अभाव के प्रभाव का तो प्रश्न ही नही उठता।

सृष्टि में मात्र पाँच ही भैतिक पदार्थ है और उन पाँचो के पाँच गुण हैं, इन पदार्थों का ही प्रभाव जीवन में सम्भव है।

जिन पदार्थों का मनुष्य उपयोग करता है उन पदार्थों के गुणों द्वारा वह प्रभावित होता है।

किस वस्तु का कैसे व कैसा प्रभाव पड़ता है इस पर यथा सम्भव विचार करेंगे।

(१) शब्द प्रक्रिया :– शब्द कोई पदार्थ नही है। यह गुण है उसका धारक आकाश है। विराट आकाश का गुण शब्द है। आकाश अनादि अनन्त है अतः उसका स्वाभाविक गुण शब्द भी अनादि अनन्त है।

शब्द भावनोत्पादक है। मानव मन में शब्दों के प्रभाव से भावनाओं की उत्पत्ति होती है। दयाभाव, क्रोध, भय, उत्साह, ईर्षा, उन्माद तथा आनन्द के भाव मानव मन में शब्द प्रक्रिया से उत्पन्न होते हैं।

शब्द में स्वर व व्यंजन समाये है, जो भावनाओं के अभिव्यक्ति के लिये उपयोग में लाये जाते हैं।

शब्दों को तोड़ मरोडकर भाषा का निर्माण कर लिया जाता है और विचारों

के आदान प्रदान में लगा लिया जाता है।

ज्ञान आत्म स्वरूप है और शब्द शरीर स्वरूप। ज्ञान शब्दवाही होकर जगत् में प्रसरता है। और उसके कारण वैविध्यपूर्ण रंगमंच उठ खड़े होते हैं। व्यवहारतः ज्ञान व शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची ही हो जाते हैं। यद्यपि दोनों भिन्न है। ज्ञान ईश्वर स्वरूप है। ईश्वर का स्वाभविक गुण ज्ञान है। ज्ञान का कभी लय नहीं होता, जब की गुण स्वरूप शब्द का प्रलय काल में लय हो, उसके गुणी आकाश में विलय हो जाता है।

जिस तरह शरीर और आत्मा भिन्न हैं और मिलते बिखरते रहते हैं उसी तरह ज्ञान व शब्द जीव के माध्यम से मिलते बिखरते फिरते हैं।

शब्दों को सुनते ही मन पर उसका प्रभाव पड़ता है, फिर व्यक्ति के ज्ञान व संस्कार के अनुसार उसमें प्रतिक्रिया उठती है।

पहला विचार – (शब्द प्रक्रिया) :– एक व्यक्ति आकाश में बादल के गरजते व चमकते विद्युत को देख सुन कर घबड़ा जाता है। उसके मुंह की आकृति भय से खिंच उठती है। वह झाड़ झंखार जो कुछ भी उपलब्ध होता है उसके नीचे झपट कर छिप जाता है।

सम्भवतः बिजली गीरने से पिछले जीवन में मृत्यु को प्राप्त हुआ होगा।

दूसरा विचार – (शब्द प्रक्रिया) :– मेरे गाँव में एक औरत बादल की गर्जना सुनकर एक दम घबडा जाती थी। रोने लगती थी। कई बार छटपटाते हुए इधर उधर भागने लगती थी। बाल बिखर जाते थे। उसके कपड़े अस्त–व्यस्त हो जाते थे। लोग उसे पकड़ कर घर के अंदर ले जाते थे। ताकि वह बादल-गर्जना न सुन सके। फिर वह स्वस्थ हो जाती थी।

बादलों की गर्जना से उसके मन में भय उत्पन्न होता था। यह स्पष्ट है। इसका कारण उसके पिछले जन्म से सम्बन्धित हो सकता है।

तीसरा विचार– (शब्द प्रक्रिया) :– कुछ लोग ढोल व नगाडे की आवाज को सुनकर घबड़ाने लगते हैं। उनके मन पर बड़ी तीव्र प्रतिक्रिया उठती है। वे रोने धोने लगते हैं। महिलायें बहुधा छटपटाने व लोटने पोटने लगती है। नगाडा के बंद होने पर वे शान्त हो जाते हैं।

एसे लोगों के पूर्व जीवन से उस नगाडे का चाहे जो सम्बन्ध हो परन्तु यह स्पष्ट है कि पूर्व जीवन में नगाडे या ढोल की आवाज के मध्य में ही उसे अत्यन्त

कष्ट या अपमृत्यु प्राप्त हुआ होगा। जिसके कारण इस प्रकार की आवाज से भय का संस्कार जीव पर बना रहता है और समुचित वातावरण में उभर आता है और व्यक्ति प्रभावित हो असाधारण हो जाता है।

चौथा विचार (शब्द प्रक्रया) : सैनिक व पुलिस दल बैन्ड बाजे की उत्साह वर्धक ध्वनि को सुन कर अत्यंत उत्साहित हो उठते हैं। ओर कठिनाई को भी बड़े साहस के साथ पार करते हैं। यह भी शब्द प्रक्रिया है।

पाँचवा विचार (शब्द प्रक्रिया) : कथा कार कथा कहता है। धर्म के प्रसंग पर श्रोतागण सुनकर आत्मविभोर हो उठते हैं। वीरता के प्रसंग पर उनमें साहस व उत्साह भर आता है। करुण प्रसंग आने पर कई लोग रोने लग जाते हैं।

यह सब शब्द प्रतिक्रिया है जो अलग अलग, व्यक्ति में अलग अलग ढंग से न्युन व तीव्र रूप में उभर जाती है।

छट्ठा विचार – (शब्द प्रक्रया) :– कई बार ढोल व नगाडे अथवा बादल या अन्य किसी तेज धमाधम की आवाज को सुनकर किसी किसी नारी व पुरुष का मन उन्मादित हो उठता है या वह उन्माद में अप्रासंगिक असाधारण बात, व्यवहार करने लगता है। चिल्लाता है, गिडगिडाता है, हाथ पाँव पटकता है, अभुआता है।

थोडी देर में शनैः शनैः उन्माद समाप्त हो जाता है और व्यक्ति शान्त व स्वस्थ हो जाता है।

देवस्थानों व मुसलमानों के दरगाह आदि में जहाँ ढोल इत्यादि बजायें जाते हैं वहाँ बहुधा ऐसी ही शब्द प्रक्रिया के दृष्य देखने को मिलते हैं।

सातवाँ विचार (शब्द प्रक्रिया) : शब्द मनुष्य की आंतरिक शक्ति है। वह जब चाहे, जहाँ चाहे, जैसा चाहे वैसा शब्द बोल सकता है। शब्दों के पीछे छीपे मंतव्यों का मनपर प्रभाव पड़ता है। मनुष्य भजन गायन करता है उसके मंतव्यों में कई बार वह इतना खो जाता है कि स्वयं को भी थोड़ी देर के लिये विस्मृत कर जाता है। इस तरह स्वयं के शब्दों का भी स्वयं पर प्रभाव पड़ता है। साथ साथ सुनने वालों पर भी विविध स्वरूप में न्युनाधिक प्रभाव पड़ता है। कहने का अभिप्राय यह है कि शब्दों के बोलने तथा सुनने दोनों का प्रभाव मन पर पड़ता है।

आठवाँ विचार (शब्द प्रक्रिया) : तबला व ढोल बजाने वाला व्यक्ति अपने शरीर व सर को भी ध्वनि के साथ घुनता रहता है। जो कि वह साधारणतया नही कर सकता ! वह उस समय स्वयं को भी भूल गया होता है। यह सब शब्द प्रतिक्रिया है।

नववाँ विचार (शब्द प्रक्रिया) :– शब्द विज्ञान एक अत्यंत गहन एवं विस्तृत विज्ञान है। विविध विचार धाराओं को उत्पन्न करने के लिये शब्द एक बहुत बड़ा साधन है। धृणा, करूणा, क्रोध, ईर्षा आदि का भाव स्वर माध्यम से उत्पन्न होता है। कहीं शब्द का सदुपयोग होता है, कहीं शब्द का दुरुपयोग। शब्द के आरोह व अवरोह में इतना प्रभाव है उसके समुचित योगाभ्यास से कई मानसिक अथवा शारीरिक रोग दूर किया जा सकता है। उसके दुरुपयोग से कष्ट भी उत्पन्न हो जाते है। उसी प्रकार शब्द के प्रभाव से मन में उन्माद भी उत्पन्न हो जाता है। और व्यक्ति कुछ देर के लिये असाधारण (ABNORMAL) एवं अप्रासंगिक हो जाता है। जिसे अज्ञानतावश भूत–प्रेत जादू टोना समझ लिया जाता है। वास्तव में यह भी अंगमेजयत्व का एक स्वरूप ही है जिसका वर्णन मात्र अध्यात्मिक प्रसंग में महर्षि पातञ्जलि ने योगदर्शन के समाधि पाद के ३१ वें सूत्र में किया है।

दशवाँ विचार – (शब्द प्रक्रिया) : शब्द से कम्पन (VIBRATION) उत्पन्न होता है। जिस की प्रतिक्रिया जीव निर्जिव सभी वस्तुओं पर पड़ती है। शब्दों को प्रकाश व विद्युत में परिवर्तित किया जा सकता है। और फिर वापस शब्द में लाया जा सकता है। शब्द में बडी शकित है। शब्द उद्घोषित होते ही तत्कालीन सारे ब्रह्मान्ड में समा जाता है। और फिर जहाँ चाहे वहाँ वापस उसी स्वरूप में प्राप्त किया जा सकता है।

शब्द का उद्‌घोष यदि मनुष्य के श्रवण शक्ति से अधिक हो तो श्रोत्रेन्द्रिय विकृत या नष्ट हो जाती है। किसी किसी कारखाने में जहाँ आवाज अधिक होता रहता है वहाँ के कर्मचारी बहुता ऊँचा सुनने लगते हैं। यदि शब्द अत्यंत तीव्र हो तो शरीर के अन्य नाजुक अवयव भी विकृत हो सकते है। युद्ध के दिनों में जन साधारण को शिक्षा दी जाती है कि जब बंम गिरने का संकेत मिले तो (ट्रन्च) खड्डे में मुँह के बल लेट जाना चाहिये और मुँह में कोइ कपड़ा भर लेना चाहिये और कान को भी किसी तरह से बंद कर लेना चाहिये।क्योंकि बम फूटने की आवाज इतनी तीव्र होती है कि दाँत बंद हो जाते है और जल्दी खुलते नहीं। यदि जीभ दब गई तो कट जाती है। बहरापन आ सकता है और तीव्र आवाज के कारण मृत्यु भी हो सकती है।

निर्बल प्राणी थोडी आवाज़ से भी मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। मंदिरों में जब आरती आदि के समय घंटी, घंट बजाये जाते हैं। तो उसकी ध्वनि के कारण कितने जीव जन्तु आकाश व वायु में ही समाप्त हो जाते हैं। वातावरण किटाणु रहित हो जाता है।

कई बार प्राणी आवाज से घबड़ा कर अथवा उसकी प्रतिक्रिया के कारण

जंगल इत्यादि में भाग जाते हैं। और उसे अज्ञानता के कारण लोग भूत–प्रेत का करिश्मा मान लेते हैं।

ग्यारहवाँ विचार– (शब्द प्रक्रिया) : सन् १९५५ में मेरी ट्रान्सफर गुजरात प्रान्त के सुरेन्द्रनगर नामक शहर में हुई। वहाँ रेल्वे में एक नयी कोलोनी बनी थी उस नई कोलोनी में मुझे रहने के लिये सर्वप्रथम दिया गया अभी वहाँ कोई रहने नही गया था। मुझे भी वहाँ के लोगों ने जाने से मना किया। उन लोगों का कहना था कि जहाँ यह कोलोनी बासाई गई है वहाँ छोटे मृत बच्चों को गाड़ देने का श्मशान था और जो मकान मुझे दिया गया था उसके सामने जो कुआँ है उसमें एक चुडैल रहती है। परन्तु मै उन सब बातों में न आया और उस रेलवे क्वाटर में अकेले ही रहने चला गया। उन दिनो मेरी पत्नि मेरे पिता व माताजी के साथ थी। जब मैं वहाँ रहने गया तो अडोस–पडोश में कोई नही था। पूरी कोलोनी खाली पड़ी थी। पीछे के भाग में कुछ दूर पर कुछ मजदूर रहते थे। लगभग एक सप्ताह आराम से रहने के बाद एक दिन रात लगभग दो बजे मेरी नींद खुल गई और मुझे सुनाई पड़ा कि बाहर के दरवाजें पर कोई धीरे धीरे खट–खट कर रहा है। मैं उठ कर दरवाजा खोला तो वहाँ कोई न था। मैं वापस आकर पीछे के वरान्दे में सो गया। सोते ही फिर आवाज आने लगी जैसे कोई धीरे धीरे दरवाजा ठोक रहा हों। फिर मैं ने जाकर दरवाजा खोला तो वहाँ कोई न था। मैं बड़ा परेशान हुआ। और आकर सो गया। सोते ही फिर आवाज आने लगी। मैं थोडा भयभीत हो उठा। वहाँ कोई था भी नहीं कि सहारा लिया जाता। हिम्मत बटोर कर मैं ने फिर दरवाजा खोला तो वहाँ किसी भी व्यक्ति को देखा नहीं। अब की बार दरवाजा बंद कर के अंदर से खटकनी नहीं लगाई और में दरवाजें के पास सहमा सा खड़ा रहा। तब मुझे लगा कि पिछले दरवाजे को कोई खिटखटा रहा है अब मैं ने पिछले दरवाजे को खोला तो वहाँ भी कोई नहीं और आवाज आगे के दरवाजे से आने लगी। और कई बार मैं आगे व पीछे के दरवाजे पर जाता रहा। और आवाजें आगे व पीछे बदलती रही। दरवाजा खोलने पर कोई नहीं मिलता था। मैं और भयभीत हो गया। आखिर हार कर मैं फिर बिस्तरे पर सो गया तो फिर वही आवाज। अब तो मुझ ऐसा लगा कि सोते कोई धीमे धीमे ताली बजा रहा है। मैं बहुत घबड़ाया। परन्तु हिम्मत रखी । सोते सोते ताली की आवाज सुनता रहा। नींद भाग गई। प्रातः चार बज गया। फिर मैं उठकर आहिस्ते आहिस्ते आगे के दरवाजे को चला जबं मै बीच के खुले दरवाजें में था तो मुझे लगा कि वह ताली की आवाज अब मेरे सर

के उपर से आ रही है। मै अवाक सा रह गया और ऊपर देखने लगा। एक दो मिनट वही खड़ा रह गया। तब देखा कि बीच के दरवाजे में मेरी एक पूरे बाँह की कमीज टंगी हुई थी। उसके हाथ की बटन हवा से उड उड कर दरवाजें से टकरा रही थी और उसकी आवाज को मैं समझ रहा था कि कोई बाहर का दरवाजा खटखटा रहा है। मै ने कमीज को उतार ली बस सारा चमत्कार समाप्त हो गया बहुत देर तक मेरा हृदय जोर जोर घबड़ाता रहा और श्नैः श्नैः शान्त हुआ और में तब जाकर देर तक सो कर अपनी नींद को पूरा किया।

ऐसी दशा में यदि मैं भूत–प्रेत, जादू टोना आदि का विश्वासी होता तो मेरी दशा अत्यंत खराब हो जाती, मुझे बड़ा आघात लगता और मैं अवश्य बीमार पड़ जाता। और लोगों को भूतप्रेत की प्रत्यक्ष देखी व अनुभव की हुई अकाटय बातें बताता फिरता और भूतप्रेत की अज्ञानता का प्रसार करता।

बारहवाँ विचार (शब्द प्रक्रिया) : अमदाबाद (गुजरात) में विष्णूनगर में मेरे पड़ोस में श्री चन्द्रमानजी मिश्रा रहते थे। वे जब किसी के रोने की आवाज सुनते थे तो उनका मन व्याकुल हो जाता था और सर चकराने लगता था। मन बोफिल हो जाता था और वे वमन करने लगते थे। उन्हें सम्हालना पड़ता था यदि यह रुदन प्रक्रिया देर तक रहे तो वे बीमार पड़ जाय। यह भी शब्द प्रक्रिया है। न कि दैवी अथवा दानवी प्रकोप।

तेरहवाँ विचार (शब्द प्रक्रिया) : श्रीपति चन्द्रकान्ता बहन मधुभाई देसाई, विसनगर, महेसाना (गुजरात) की आर्यसमाज की कार्य कर्त्ता है। वे ईश्वर की प्रार्थना में इतना विभोर हो जाती हैं कि रो पड़ती हैं। और दोचार मिनट अपने भावभंगिनामें आत्मसात रोती रह जाती हैं फिर स्वस्थ हो जाती हैं। उनका जीवन भी करुणा से ओत प्रोत है प्रार्थना के भव्य भावों में करुणा के भावों का उनके करुणामयी हृदय मे उदय होना और मन प्रभावित हो प्रतिक्रिया स्वरूप रूदन करना शब्द प्रक्रिया है न कि किसी अज्ञात शक्ति का प्रभाव।

चौदहवाँ विचार – शब्द (आवाज) विशेष से किसी के मन में उन्माद की लहर दौड पड़ती है तब अनेक नर नारी अनेकों प्रकार के असामान्य व्यवहार करने लगते हैं। नाचना, उछलकुद या अभुआना भी इसी कारण होता है। पूजा स्थलों अथवा दरगाहों आदि में ऐसा व्यवहार देखने को मिलता है।

रूप

मनुष्य जो कुछ भी देखता है उसका प्रभाव उसके ऊपर पड़ता है। इस प्रक्रिया में मनुष्य का संस्कार, विश्वास तथा सामाजिक परिस्थिति का बड़ा महत्त्व है। एक ही वस्तु के देखने से कोई भयभीत हो जाता है तो कोई कौतूहल प्रद हो जाता है और किसी किसी पर कुछ भी प्रभाव नही पड़ता।

इस प्रक्रिया में चक्षु प्रकाश तथा दृष्य इन तीनों वस्तुओं का संघात होता है। उन में से किसी भी एक के अभाव में प्रक्रिया का उठना सम्भव नही।

प्रक्रिया का प्रकार अर्थात् सुखद होगी या दुःखद यह व्यक्ति विशेष के जीवन पर निर्भर करता है।

कटते हुए बकरे को देख कर कोई मर्माहत हो उठता है तो किसी के मुँह में पानी आ जाता है।

किसी सुन्दर युवति को देख कर किसी को अपनी बहन या पुत्री याद आ जाती है तो किसी की काम वासना उभर पड़ती है।

बड़े बड़े मंदिरों में जाकर जहाँ लोग भक्ति करते है, वही कुछ लोग चोरी व दुराचार करते है।

दृष्य के प्रभाव का विश्लेषण बड़ा कठिन है। कुछ लोगों के मस्तिष्क में दृष्टि के कारण दर्द होता है या सर भारी भारी सा लगता है। कुछ लोग पढने में शीघ्र ही मानसिक थकान अनुभव करने लगते हैं।

कुछ लोग रंगान्ध (COLOUR BLIND) होते हैं। उन्हें अमुक रंग दिखलाई ही नही पडता। दृष्य महत्त्व सम्बन्धी उनकी बातें उनके रंगान्धता के अनुकूल होती है। और उनका विचार या निर्णय भिन्न होगा।

दृष्य सम्बन्धी प्रक्रियाओं का उग्र रूप तथा साधारण रूप होता है।

जब उग्र प्रक्रिया उठती है तब व्यक्ति असाधारण (Abnormal) हो उठता है। जिसे ना समजी के कारण भूतप्रेत जादु–टोना आदि मानलीया जाता है।

(१) पहला विचार : मेरे पुत्र को जयप्रकाश चतुर्वेदी का सन १९७८ एक बार शर्दद का एसा उग्र रोग लगा की जब उनके सरमें दर्द उठता था तो वे व्याकुल हो कर छटपटाने लगते थे और अपने हाथ पाँव झटकने पटकने लगते थे। बातों

को नोचने लगते थे। दो चार आदमी उनको जोरसे पकड लेते थे। लगभग आधे घन्टे के बाद दर्द शान्त हो जाता था। फीर वे स्वस्थ हो जाते थे जैसे कुछ हुवा ही नहीं । है, लोग तरह तरह की बातें करते। कोई भूतप्रेत तो कोई जादु टोना तो कोई नशीले पदार्थका प्रभाव तो कोइ मृगी आदी बताता था। बहुत कुछ इधर उधर चिकित्साके बाद उन्हें वाराणसी हीन्दु विश्व विद्यालय (BHV) के मेडिकल कोलेज में न्युरोलोजिस्ट को बताया गया। वहाँ समुचित तपास के बाद, डॉक्टरों ने बताया कि उन्हें कुछ रोग नहीं है उनको दूर का चश्मा लगाना है।

दूर का चशमा लगा दिया गया और सरदर्द सर्वथा दूर भाग गया। वर्ना भूतप्रेत के अतिरिक्त कोई चारा न था।

दूसरा विचार : सुरेन्द्रनगर (गुजरात) के लोको शेड़ में मेरे हाँथ के नीचे एक खलासी श्री छेलशंकर सन् १०६५ में काम करता था। उनकी पत्नि जब कभी भी कोई कटा हुआ पपीता या खरबूजा देखती तो एक दम घबड़ा कर लगभग बेहोश सी हो जाती थी। उसे सम्हालना पड़ता था। थोड़ी देर के बाद वह स्वस्थ हो जाती थी। इसके पीछे उसके पूर्व जीवन का संस्कार ही होना चाहिये जो उस दृष्टि को देख कर घबडा जाती थी।

तीसरा विचार : सुरेन्द्रनगर (गुजरात) में रेल्वे में रामसिंह नाम का १९५५में एक शंटर था, लोको शेड़ या स्टेशन पर वह रेल्वे इन्जन द्वारा मालगाडी के डिब्बों का या ठंढे इन्जनों का शंटिंग (SHUNTING) करता था। उसे सामने से लाल बत्ती रुकने के लिये बतायी जाय तो भी नहीं रुकता था। कई बार उसने इंन्जन का एकसीडेन्ट कर दिया । बाद में पता चला कि वह कलर ब्लाइन्ड है उसे लाल कलर दिखलाई ही नहीं पड़ता था। उसी तरह कुछ लोग पीला तो कुछ लोग हरा रंग नही देख पाते है।

मान लीजिये, एक आदमी अपने गले में पीले रंग की रूमाल बांधे आ रहा है और उसे देखने वाला पीलान्ध है। अब उस पीलान्ध व्यक्ति को आने वाले व्यक्ति का सर धड से अलग होने का भ्रम उत्पन्न होगा। इसी तरह से रंगांधता अथवा कमजोर ज्योति के लोगों को कोई कोई दृष्य भ्रमित कर देता है। और उस भ्रम की प्रतिक्रिया स्वरूप वह घबडाता है और घबराहट की उग्रता ही बीमार कर देती है, जिसे भूतप्रेत जादूटोना मान लिया जाता है, जबकि वह होता है दृष्टि प्रक्रिया अथवा रूप प्रक्रिया।

विपर्यय वृत्ति व रूप प्रक्रिया लगभग एक ही जैसी होती है। केवल अंतर

इतना कि विपर्यय में गलत वस्तु को सही मान लिया जाता है जबकि रूप प्रक्रिया में सच्चे दृष्य को गलत समझ लिया जाता है।

चौथा विचार (दृष्य) : मान लीजिये, एक व्यक्ति को किसी मंदिर में काली माई के मंदिर में ले जाकर धूपदीप करके घंट आदि बजाकर मूर्ति के सामने उसे त्राटक बंध कर दिया गया था। अब वह इस जीवन में जब कभी काली माई की मूर्ति देखता है और घण्ट इत्यादि बजने का वही वातावरण को प्राप्त होता है तो उसके अन्दर स्वाभाविक भय उत्पन्न हो जाता है वह घबड़ाता है और भाग जाने का प्रयत्न करता है। उसके इस व्यवहार के पीछे किसी देवी देवता की प्रेरणा मान लिया जाता है।

पाँचवा विचार – (दृष्य) : जन्म जन्म के संस्कारों के कारण रूप विशेष के देखने से व्यक्ति आमोदित या भयभीत हो जाता है। यह परिस्थिति थोडी देर में उग्रता ले लेती है। आमोद की उग्रता में व्यक्ति नाचने गाने उछलने, लोगों से चिपटने लग जाता है और भय की उग्रता में वह कांपने लगता है। रोने लगता है छटपटाने लगता है, बेहोश हो जाता है आदि आदि।

कमजोर व्यक्तित्व या मनोबल तथा अंधश्रद्धा में रचेपचे व्यक्ति को ही यह सब प्रक्रियायें होती हैं। शुद्ध व दृढ मनोबल वालों को नहीं।

बहिरंग प्रक्रिया (रस)

(१) रस

रस का सम्बन्ध स्वाद तथा भोजन से है। प्राणी का शरीर भोजन से निर्मित और पोषित होता है। भोजन के विना जीवन असम्भव है। मनुष्य को यदि समुचित भोजन न मिले तो वह अपोषण के कारण निर्बल दुबला पतला और अयोग्य हो जाता है। व्यक्ति जैसा भोजन करता है वैसा ही उसके शरीर व मन का निर्माण होता है। तामसी भोजन से तामसी तथा सात्त्विक भोजन से सात्त्विक विचार उत्पन्न होते है। भोजन के अतिरिक्त व्यक्ति की शिक्षा तथा जीवन को घिरे हुए वातावरण व परिस्थितियों का भी व्यक्तिके मानस पटल पर प्रभाव पड़ता है।

व्यसनी व्यक्ति भोजन को स्वाद की दृष्टि से देखता है; जबकि सात्त्विक व्यक्ति भोजन को पौष्टिकता की दृष्टि से देखता है।

भोजन के लिये स्वाभाविक यह है कि भोजन को ऋतुओं के अनुसार खाना चाहिये और जितनी मात्रा में योग्य हो उतना ही खाना चाहियें तथा जिस व्यक्ति के लिये जो पोषक हो वही खाना चाहिये। उन सामान्य तथा शास्वत नियमों का पालन करने वाला सुखी रहता है। जो इसका उलंघन करता है उसे रोग व्याधि घेरे रहती है और वह दुःखी रहता है। अजीर्ण भोजन विष का काम करता है। गाँवो में अजीर्ण भोजन के कारण खास कर के ग्रीष्म के दिनों में कभी कभी हैजा (कालेरा) हो जाता है। उस बीमारी को महाभारी भी कहा जाता है। गाँवों में इस प्रकोप को भी देवी देवता का प्रकोप मान लिया जाता है।

मनुष्य को स्वादका व्यसन लगता गया और वह उसके पीछे भागता गया वह पौष्टिकता को भूलता गया और स्वाद को अपनाता गया। मीठा, भोजन, खट्टा भोजन, तीखा भोजन, खट्टा मीठा भोजन हर स्वादों के मिश्रित –भोजन की खोज करता गया फिर चटनी आचार और सिरका बनाया।

पदार्थो में एक अभिन्न गुण है कि वह अपना गुण व स्वभाव बहुरूपिया जैसा बदलता रहता है। मनुष्यने स्वाद के व्यसन में जब अनेकों प्रकार के भोज्य व पेय पदार्थ बनायें तब उसमें स्वाद के साथ–साथ मादकता एवं रोगीष्ट गुण या अवगुण भी आते रहे। व्यसनी मनुष्य इसकी चिन्ता किये विना अपने स्वाद व्यसन में मस्त रहा और मादकता के चंगुल में आ फसा।

मादक वस्तुने व्यक्ति के जीवन में ऐसा घर कर लिया है कि अब तो वह जब तक मादकता के प्रभाव में नहीं आता उसकी बुद्धि ही कार्य नहीं करती है। मादकता के विहिनता में ही वह असामान्य व पशु सा हो जाता है। और मद में ही वह सामान्य रूप में रह सकता है। जब कभी उसे मादक वस्तु नहीं मिलती वह छटपटाता हैं, चिल्लाता है, रोता है और बेकार हो जाता है।

इस प्रक्रिया का यह विकृत स्वरूप है। जो रस प्राणदा व जीवनदा है उनका दुरुपयोग इस हद तक, कि व्यक्ति बेकार हो जाय, करना मृत्यु की और बढना है। परन्तु व्यक्ति जान बुझ कर भी मानता नहीं। उसको न मानने के पीछे जो व्यसन का कुप्रभाव है उसे भी अज्ञानी जन किसी अज्ञात शक्ति की प्रेरणा मान लेते हैं।

मनुष्य के अंतःकरण में प्रक्रियाओं अथवा प्रतिक्रियाओं का एक श्रोत स्वाद भी है। किसी भी पदार्थ का स्वाद रसनेन्द्रिय द्वारा प्राप्त होता है। मनुष्य जब किसी वस्तु को खाता हैं या पीता हैं तो सर्व प्रथम तो उसे उसका स्वाद रसनेन्द्रिय द्वारा प्राप्त

होता है। इस स्वाद को अच्छा या बुरा प्रभाव उसके मन पर पड़ता है।

खाये हुये पदार्थ का प्रभाव दो प्रकार का होता है। एक तो उसके स्वाद का और दूसरा उसके रसायनिक गुणों का। जब व्यक्ति दूध पीता है तो पहले उसके स्वाद का वह आनन्द लेता है फिर दूध के अंदर व्याप्त रसायनिक पदार्थों की प्रक्रिया यथा योग्य उसे प्राप्त होती है।

पदार्थों के गुण व स्वभाव विभिन्न प्रकार के होते हैं। किसी पदार्थ का स्वाद अच्छा किन्तु गुण खराब होता है तो किसी का स्वाद खराब किन्तु गुण अच्छा होता है।

स्वाद या गुण तो जैसा होता है वैसा ही होता है। परन्तु उसका प्रभाव विभिन्न व्यक्तिओं पर विभिन्न प्रकार के होते है।

एक ही प्रकार का स्वाद किसी को अच्छा तो किसी को बुरा लगता है। एक ही पदार्थ खाने से किसी को लाभ तो किसी को हानि हो जाती है। एक ही पदार्थ किसी व्यक्ति को सदा लाभ देते है तो एक दिन हानि भी कर देता है। यह सब समय परिस्थिति एवं उम्र के ऊपर निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति के स्वयं के गुण धर्म तथा विश्वास पर भी बहुत कुछ आधारित होता है।

कई बार अप्रिय स्वाद भी बार-बार के सेवन से प्रिय हो जाता है और फिर उसके विना उसे अच्छा ही नहीं लगता। जब कोई व्यक्ति प्रथम बार तम्बाखू खाता है या दारू पीता है तो उसे अच्छा नही लगता उसका मुँह कड़वा होता जाता है। किसी किसी को तो चक्कर आ जाता है और उपचार करना पड़ता है। परन्तु जब इन पदार्थों की उसे आदत पड़ जाती है तब उसके विना उसे चैन नही पड़ता वह असंतुष्ट, असंतुलित एवं व्याकुल सा हो जाता है।

इस तरह व्यसन में ओत प्रोत व्यक्ति व्यसन रूग्ण हो जाता है। नशा ही उसकी गुणता है। जब वह नसे में होता है तब वह असामान्य बात व्यवहार करता है। प्रारम्भ में व्यक्ति सम्हला सम्हला रहता है। परन्तु जैसे-जैसे उसका व्यसन बढ़ता है, वैसे वैसे उसकी असाधारणता भी बढ़ती जाती है। गाँव के अशिक्षित समाज मे जहाँ असाधारणता अथवा असामान्यता दिखलाई पड़ी की वहीं भूतप्रेत जादू टोना की बात निकली।

प्रथम विचार- (रस) : एक व्यक्ति गाँव से रोज शहर नौकरी करने जाता था। शहर में अन्य व्यक्तिओं के साथ के कारण उसे अफीम खाने की आदत पड़

गई। घर पर उसकी पत्नी और छोटे- छोटे बच्चो को जरा भी- पता नही था कि वह अफीम खाने लगा है। कभी-कभी उसे अफीम नही मिल पाती थी उस दिन उसकी दशा ठीक नही रहती थी। अधमरा सा पड़ा रह जाता था। इस तरह की दशा कई बार देखने के बाद उसकी गरीब अनपढ़ पत्नी को चिन्ता हुई। उसने एक कर्मकान्डी पंडितजी से पूछा। पंडितजी ने विचार करके बताया कि उसे तो किसीने कुछ कर दिया है। जीव बड़ी व्याधि में है। इस के लिये कुछ कर डालो नही तो बड़ा भय है। अनपढ़ औरत अंधश्रद्धा के कारण टूट पडी। उसने पंडित के पाँव पकड़ कर प्रार्थना की कि उसके पति को किसी भी तरह बचा लो। पंडितजी ने कर्मकांड किया, आटा चावल, दाल, सेन्दूर, धूप, दीप, पीला कपड़ा आदि आदि मंगवाकर रखवाया और बड़ा पूजापाठ किया। औरत को बडी शान्ति हुई की चलो संकट हटा।

यह रस प्रक्रिया की करामत है जो ज्ञानान्धकार में भूतप्रेत ही समझा जाता है। यदि वह अफीम के व्यसन में न पड़ता तो कहीं कुछ न था।

दूसरा विचार : (रस) : गाँव में एक व्यक्ति किसी तीव्र मादक वस्तु को अधिक मात्रा में खा लेता है। घर पर किसी को कुछ मालूम नही होता है। उसकी दशा बिगड़ती जाती है। मादक वस्तु की प्रतिक्रिया उग्र रूप ले लेती है। वह बेहोश हो जाता है। उसके मुँह से झाग निकलता है, आँखे लाल हो जाती हैं जब तक लोग इकट्ठे हो और दवा या पूजापाठ की सोचे तब तक वह दम तोड़ देता है, गाँव के अनपढ़ लोग उसे किसी भूत-प्रेत का प्रकोप मान लेते है। और मृत्यु के बाद भी कुछ कर्म काण्ड करवाते हैं ताकि अन्य लोग सकुशल रहें।

तीसरा विचार (रस) : धूम्रपान की भी बहुत सी मादक वस्तु बना ली गई है। ऐसे धूम्रपान का प्रभाव सीधे बुद्धि पर पड़ता है। व्यक्ति मादक धूम्रपान कर के असामान्य दशा में भटकता है और अप्रासंगिक अथवा अर्थहीन बातें करता है। ऐसे व्यक्ति की दशा "सन्मुख साँप छछूंदर केरी" जैसी हो जाती है। यदि वह व्यसन करता है तो असामान्य बात व्यवहार करता है और यदि व्यसन नही करता है तो उसकी कमी से उत्पीड़ित हो असामान्य व्यवहार करता है। इस प्रकार मादक वस्तु के कुप्रभाव कभी-कभी व्यक्ति के मस्तिष्क को स्थाई रूप से विकृत कर देता है। तब वह व्यक्ति पागल या अर्धपागल जैसा होकर भटकता फिरता है और अज्ञानतावश इस रस प्रक्रिया को लोग भूतप्रेत जादूटोना मान बैठते है।

चौथा विचार (रस) : विविध धर्मस्थानों पर जल व अन्य पेय पदार्थ कुछ खाद्य, पदार्थ, प्रसाद के रूप में आगंतुकों को दिया जाता है। कई बार किस-किसी

स्त्रियों एवं पुरुषों पर इस प्रसाद का उस वातावरण में प्रभाव पड़ जाता है। उस स्वाद व वातावरण के प्रतिक्रिया स्वरूप व्यक्ति के वर्तमान या पूर्व जन्म के किसी सुषुप्त संस्कार का अचानक उसके अंतः करण में उदय हो उठता है। वह मानसिक स्वरूप में दूसरा व्यक्ति हो उठता है और अप्रासंगिक व अव्यवहारिक बातें करने लगता है। ऐसी दशा में वह हँस भी सकता है, घबडा कर भाग भी सकता है। यह सब उस की अंतरात्मा में सुषुप्त संस्कारों के ऊपर निर्भर करता है।

देव स्थानों में जहाँ धूपदीप किया हो लोहवान या गूगल की सुगन्ध वातावरण में व्याप्त हो। ढोल नगाडे घंटी घंट बज रहे हो, लोग भजन गान अथवा मंत्रोच्चार कर रहे हो। कई लोग मस्त हो उछल कूद या नृत्यु कर रहे हों। तो इस परिस्थितिमें साधारण व्यक्ति के हृदय में भी कुछ न कुछ न्युनाधिक संस्कारवत् प्रतिक्रिया उठती ही है। किसी किसी में ऐसी प्रतिक्रिया उग्र हो जाती है तो उसे देवी देवता का प्रभाव मान लिया जाता है।

पाँचवा विचार (रस) : किन्हीं–किन्हीं व्यक्ति का मन परिस्थिति, समय, स्थान, पान तथा शब्द ध्वनि के संयुकत प्रभाव से उन्मादित हो उठता हैं और उस उन्माद में वह उछल कूद लोटपोट करता है, हाथ पैर– झटकता है, बालों को नोचता है, यह उन्माद के कारण होता है, यही अंगमेजयत्व है, जिसे लोग भूतप्रेत, जादूटोना आदि मान बैठते हैं।

(४) गन्ध

मस्तिष्क पर गंध का बडा प्रभाव पड़ता है। उससे मनुष्य को स्फूर्ति, नशा तथा बीमारी प्राप्त होती है। एक ही प्रकार की गंध किसी पर अच्छा तो किसी पर बुरा प्रभाव डालती है। गन्ध सुधा का काम करती हैं और विष का भी। एक ही प्रकार की गन्ध किसी परिस्थिति विशेष में लाभदायक होती है तो दूसरी परिस्थिति में हानिकारक। एक ही प्रकार की गन्ध एक ही वातावरण में, अमुक मात्रा में लाभदायक होती है तो उससे न्युनाधिक मात्रा में हानिकारक।

डाकटर लोग शल्यक्रिया के लिये गन्ध की सहायता से (क्लोरोफोम से) मरीज को बेहोश कर देते हैं। गन्ध की मात्रा कम हो तो व्यक्ति सम्पूर्ण बेभान नहीं होता और यदि अधिक हो जाय तो हानिकारक सिद्ध होता है। कई बार मृत्यु भी हो जाती है।

चोर या ठग लोग पहले व्यक्ति को किसी तरह बेहोश कर देते हैं या तो नशे में चूर कर देते हैं और फिर उसको लूट कर चम्पत हो जाते हैं।

सुगन्ध का भी व्यसन होता है। अमुक सुगन्ध इत्र आदि का मनुष्य व्यसनी हो जाता है। कुछ लोग तम्बाखू अदि को सदा सूंघते फिरते हैं। जब व्यक्ति को उसका व्यसन– सुगन्ध नहीं मिलता है तो वह अशान्त अथवा अस्वस्थ हो जाता है। उससे कोई कार्य नहीं हो पाता वह सर पकड़ कर बैठ जाता है। कई बार व्यक्ति व्यसन रूग्णता के कारण चिड़चिड़ा हो जाता है। व्यसन से किसी किसी की बुद्धि स्थाई रूप से मन्द अथवा विकृत हो जाती है। अज्ञानता वश इन सभी व्यसन वासनाओं की प्रतिक्रयाओं को भूतप्रेत जादू टोना मान लिया जाता है।

जहरीले जानवर के काटने की चिकित्सा जन्त्र–मन्त्र द्वारा करना करवाना ग्रामीण समाज में आज भी काफी तौर पर व्याप्त है। जब कि "होम्योपेथी" में वैज्ञानिकों ने लक्साइन (Luxine) नाम की औषधि का निर्माण किया जिसकी सुगन्ध मात्र के सेवन से साँप बिच्छू आदि का विष दूर हो जाता है।

लगभग दश वर्ष पूर्व भोपाल (म.प्र.) में एक कारखाने में किसी हानिकारक गैस की पाईप से गैस बाहर उड़कर वातावरण में व्याप हो गई जिस के कारण अचानक कुछ ही धन्टों में हजारों मनुष्य व जानवर मर गये थे।

प्राकृतिक वातावरण में भी एक न एक प्रकार की गन्ध सर्वदा रहती है। गन्ध पृथिवी का स्वाभविक गुण है। विश्व में सर्वदा उसका प्रभाव रहता है।

भूमण्डल की स्वाभाविक गन्ध ऋतुओं के साथ परिवर्तित व न्युनाधिक भी होती रहती है। किसी किसी व्यक्ति के मन पर किसी एक गन्ध विशेष की प्रतिक्रिया उठती है। जब कभी भी वह सुगन्ध उसे प्राप्त होती है तब वह प्रभावित हो जाता है। और उसका बात–व्यवहार रहन–सहन भिन्न हो जाता है।

गन्ध का प्रभाव केवल मनुष्य पर ही नहीं अपितु समस्त जीवों पर पड़ता है। पशु पक्षी कीड़े मकोडे अपना व्यवहार तथा जीवन चर्या ऋतुओं के अनुसार बदलते रहते हैं।

कार्तिक मास में अक्सर कुत्ते अधिक कामुक हो उठते हैं। और कुत्तियाँ गर्भिणी हो उठती है। वही कुत्ते दूसरी ऋतु में कामवासना से मुक्त रहते है। वसन्त आदि ऋतुओं में मोर पक्षी आमोदित हो नाचने लगते हैं।

किस किस प्रकार की कितनी मात्रा में कौन–कौन सी गन्ध, प्रकृति कब कब उपसा देती है और उसकी कौन कौन से प्राणी पर क्या–क्या प्रभाव पड़ता है

यह अपने आप में सागर जैसा गहरा एवं बिहद विषय है।

मूल बात यह है कि समय परिस्थिति एवं स्थान के अनुसार गन्ध स्वभावतः उत्पन्न होती है। जो सभी प्राणियों पर प्रभाव डालती है।

मानव मन पर गन्ध का अच्छा या बुरा प्रभाव कितनी प्रबलता से पड़ता है या नहीं भी पड़ता हैं, यह व्यक्ति के वर्तमान जीवन के मनोबल, वातावरण, स्वास्थ्य एवं श्रद्धा के साथ–साथ पूर्वजन्मों के संस्कार पर निर्भर करता है।

मनुष्य को स्वयं के शरीर में प्रतिक्रिया उत्पन्न करने की एक प्रकार की वासना अथवा नशा हो जाती है। जब तक वह प्रतिक्रिया के प्रभाव में आकर अपने हाथ पैर – व –सर आदि झटक पटक नहीं लेता उसे चैन नहीं पड़ता। उसका शरीर अन्दर ही अन्दर टूटने लगता है। और जब प्रक्रिया के प्रभाव में आकर अपने शरीर को तोड़ मरोड लेता है तब उसे शान्ति मिलती है और तब वह शान्त, सुस्त, आराम से बैठ जाता है। जब उसे छटपटाने की वासना उपसती है तो वह ऐसी किसी जगह की खोज में भागता है जहाँ उसे अनुकूल गन्ध का वातावरण प्राप्त होता है। अक्सर ऐसा स्थान मन्दिर, मस्जिद, दरगाह, इत्यादि होता है, जहाँ विविध प्रकार के लोग आकर विविध प्रकार के धूप दीप जलाकर विविध गन्ध उत्पन्न करते हैं। व्यक्ति की इस व्यसन रुग्णता को अज्ञानतावश लोग भूतप्रेत जादूटोना मान लेते हैं।

दुर्गंध से बीमारी फैलती है। यह एक निर्विवाद सत्य है। किसी परिवार के धर में यदि दुर्गंध होती है तो फिर उस परिवार के लोग बीमार पड़ते ही रहते है। अज्ञानता वश खास कर गाँवों में लोगों को पता नहीं चलता कि बीमारी का कारण गंदगी व दुर्गंध उसके धर में वर्तमान है।

वह शहर जाकर डाकटर से दवाई लाता है। डाकटर को भी बीमारी के मूल कारण का पता नहीं होता। वह तो रोग का निदान कर के दवाई दे देता है। रोग ठीक हो जाता है परन्तु फिर हो जाता है। इस तरह रोग लगा ही रहता है। ऐसी परिस्थिति में भी अज्ञानता वश लोगवाग भूतप्रेत आदि का प्रकोप मान विविध कर्मकाणड कर लेते हैं। कई बार ऐसे पूजा पाठ के अंतर्गत धर की सफाई हो जाती हैं गौ के गोबर से सारा धर लीपा पोता जाता है हवन आदि से वातावरण पवित्र हो जाता है और धर का सुधार हो जाता है। इस बात से लोगों में और विश्वास हो जाता है कि भूतप्रेत का प्रभाव दवाओं से नहीं गया आखिर पूजापाठ करवाया तब जाकर व्याधि से छुटकारा पाया।

गंध का अच्छा या बुरा प्रभाव का पड़ना व्यक्ति के प्रारब्ध से भी जुडा

होता है। कुछ जीव दुर्गंध एवं गंदगी में ही उत्पन्न होते हैं उसीमें पलते पोषते हैं। जब कि वही वातावरण अन्य जीवों के लिये भी प्राणघातक है। कुछ जीव पानी में तो कुछ धरती के अंदर भी होते हैं। उनकी जिन्दगी वहीं होती है। जिसे धार्मिक दृष्टि से भोग योनि कहा जाता है।

परिस्थिति, प्रकृत, व संस्कार के मिश्रित कारण से किसी व्यक्ति का मन गंध के अभाव में तो किसी का गंध के होने के कारण, उन्मादित, आनन्दित या दुःखी हो जाता है। जिसे अज्ञानता में देवी देवता का प्रभाव मान लिया जाता है।

यह एक निर्विवाद सत्य है कि मन पर गंध का प्रभाव पड़ता है जिसके कारण कई बार उन्माद उठ जाता है और व्यक्ति असमान्य व्यवहार करने लगता है।

यह उन्माद ही सब कुछ हैं। इसी को लोग अज्ञानता के कारण भूतप्रेत जादू टोना आदि मान बैठते है, खास कर ग्रामिण समाज।

स्पर्श

जीवात्मा की दश ज्ञानेन्द्रियों में से एक त्वचेन्द्रिय है। त्वचा स्पर्श प्रक्रिया द्वारा चैतन्य जीव को सन्देश देती है और उसके अनुसार जीवन में प्रतिक्रया उठती है।

स्पर्श से मन पर तात्कालिक प्रभाव पड़ता है। मनुष्य का इतना बडा शरीर रंचमात्र के स्पर्श से छटपता जाता है। गम्भीर निंद्रा में भी एक तुच्छ मक्खी के बैठने के कारण एक दम उठ पड़ता है। मनुष्य का मन कहीं कितना भी व्यस्त क्यों न हो, उसके शरीर के किसी भी भाग को जरा भी गर्म, ठंडा या अन्य किसी भी प्रकार का स्पर्श करने मात्र से उसका ध्यान लौट पड़ता है। और शरीर में उसके अनुसार प्रतिक्रया उठती है।

त्वचेन्द्रिय के माध्यम से रोग व चिकित्सा दोनों ही प्राप्त होते हैं। चेचक खसरा, दाद आदि का रोग छूत से हो जाता है।

किन्तु आज भी अंधश्रद्धालु अनपढ लोग चेचक आदि रोगों को देवी देवता का प्रकोप मानते हैं और चिकित्सा के बजाय नाना प्रकार के कर्मकान्ड व पूजापाठ करवाते फिरते हैं।

मनुष्य विविध स्थानों पर तिर्थयात्रा पर जाते है और सागर, तालाव, नदी आदि में

श्रद्धापूर्वक स्नान करते है और थोड़ा बहुत पीते हैं। इस तरह से कई व्यक्ति को जल के माध्यम से रोग हो जाता है और वह परेशान होता है। किन्तु वह व्याधि के मूल कारण को नहीं समझता और भूतप्रेत जादूटोना आदि में विश्वास करता है। उससे कुछ कहो भी तो वह मानने को तैयार नहीं होता। वह कहता है कि सारी दुनिया तीर्थ पर जाती है और स्नानादि करती है पर वे सभी बिमार क्यों नहीं हो जाते।

स्त्री पुरुष के आपसी सम्बन्धों से गर्मी, सुजाक, एड (Sypliph ghoria Aids) इत्यादि रोग लग जाते हैं। भोग विलास के व्यसनी सुरा सुन्दरी में इतना सराबार हो गये होते हैं कि उन्हें स्वयं के स्वास्थ्य का जरा भी ध्यान नहीं होता। गन्दे रोग के हो जाने के बाद भी वे उसका कई बार सम्पूर्ण व समुचित उपाय नहीं करवाते हैं, और वे वासना से निवृत हो नहीं पाते। उसका रोग थोडी बहुत चिकित्सा के कारण दूर हो गया जैसा लगता है परन्तु ऐसा नहीं होता। रोग किसी न किसी रूप में शरीर में दबा रहता हैं और अपने समय पर उभर पड़ता है। इस उभार को तो कई बार चिकित्सक तक नहीं समझ पाते हैं। व्यक्ति जब यातना सहता है तब भूतप्रेत जादूटोना मान बैठता है। परन्तु अपने व्यसन को दोष नहीं देता।

स्त्री व पुरुष के अन्दर सम्भोग की इच्छा तथा योग्यता, ईश्वरी देन है। सम्भोग हर स्त्री व पुरुष का जन्मसिद्ध एवं शास्वत अधिकार है। इस आनन्द का सद्भावना तथा सत्कर्म के विचारों से संयम पूर्वक भोग करना योग्य भी है तथा आवश्यक भी।

जब कोई व्यक्ति विशेषतः स्त्री इस स्वाभाविक इच्छा को तृप्त नहीं कर पाती तो वह अपनी विवशता में अंदर ही अंदर तड़पती है। इस तड़पन का भी कई बार उग्र स्वरूप सामने आता है स्त्री का मुँह बंद हो जाता है दाँत खुलते नहीं। आँखे कई बार खुली रह जाती है थोडी देर में ठीक हो जाता है। इस दौरे को लोग भूत प्रेत जादूटोना मान लेते हैं। जब कि उसका कारण होता हैं उसकी अतृप्ति।

अतृप्त इच्छाओं के उन्माद का आना एक साधारण बात है। परन्तु उसके प्रकार अनेक हैं। उन्मादित व्यक्ति किस प्रकार व्यवहार करेगा कितना उग्र रूप लेगा यह उसके वर्तमान जीवन के ज्ञान, संस्कार विश्वास एवं परिस्थिति पर एवं पूर्ण जीवन के संस्कारों पर निर्भर करता है।

तेल, चन्दन, धूप, भभूत इत्यादि के कारण भी व्यक्ति के अंदर प्रक्रिया होती है और उसके कारण भी उसे हानि या लाभ होता है।

कुछ साधु– सन्यासियों का कहना है कि तुलसी, रुद्राक्ष एवं सप्त धातु आदि के स्पर्श से शरीर को लाभ होता है। इसके पीछे वैज्ञानिक तथ्य तो अनुसंधान का विषय है।

तेजाब, गन्धक, पोटाश आदि के स्पर्श से शरीर में अच्छा बुरा परिणाम आता है। पोटेशियम साइनाइट का तो जानवर पर या किसी घाव पर रंचमात्र के स्पर्श से व्यक्ति की क्षणिक मृत्यु हो जाती है।

स्पर्श से प्रक्रिया का उठना तो एक निर्विवाद सत्य है। कुछ ऐसे पौधे होते है जिस के स्पर्श से विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियायें उठती हैं। किसी से छाले पड़ जाते है। किसी से जलन होती है तो किसी से खुजली उठती है। इसी प्रकार किसी से चर्म रोग ठीक हो जाते है।

पेड़ पौधों के अतिरिक्त कुछ ऐसे मच्छर तथा जीव जन्तु हैं जिस के स्पर्श अथवा काट लेने से व्यक्ति व्याधिग्रस्त हो जाता है। बिच्छू, सर्प, कुत्ते, मच्छर आदि इसी कोटि में आ जाते हैं। जिस किसी व्यक्ति का कारण नहीं ज्ञात होता है उसे लोग भूतप्रेत जादूटोना ही मान लेते हैं।

शरीर की बनावट में ऐसी बहुत सारी बाते हैं जिसका कि रहस्य मनुष्य खोज नहीं पाया है।

जीवित शरीर चैतन्य होता है जब की मृत शरीर जड़। जड़ पदार्थ से चैतन्य उत्पन्न होता हैं या चैतन्य पदार्थ के कारण जड़ में विकास अथवा प्रक्रियायें होती हैं। इस गूढ रहस्य के पीछे ज्ञानी–ध्यानी, वैज्ञानिक व मनोवैज्ञानिक लगे हुए है।

एक बात तो निर्विवाद है कि स्पर्श प्रक्रिया से ही मनुष्य की उत्पति होती है। गर्भाधान संस्कार स्पर्श क्रिया ही है। जैसे दूध से मक्खन निकलता है वैसे ही स्पर्श प्रक्रिया से मनुष्य की उत्पति होती है। इस प्रक्रिया का भी परिणाम यदि किन्हीं कारणों से प्राप्त नहीं हो तो लोग देवी–देवता पूजापाठ की राह पकड़ लेते है। क्योंकि बच्चा पैदा होना तथा न होना दोनो ही दैवी कृपा मानी जाती है।

अग्नि के स्पर्श से धातु, फैल, फूल या पीघल जाता है। वायु के स्पर्श से धूल उमड़ पड़ती है। आँधी तूफान के पीछे देवी प्रकोप की भावना रहती है। सीमा से पार गर्मी या सर्दी के शरीर में पहुँचने से मनुष्य की दशा बिगड़ जाती है। मृत्यु भी हो जाती है। व्यक्ति का मन गर्मी–सर्दी अथवा वायु के स्पर्श से भय, व्यग्र, उग्र या उन्मादित होता हैं, जिसे लोग समझ नहीं पाते हैं। और दैवी देवता मान बैठते है।

इन्जेकशन, टीका, एक्यूपंकचर, मालिश लेप आदि उपचारों से रोग दूर

किये जाते है। तथा कई बार उससे अन्य रोग भी हो जाते हैं, किसी-किसी चिकित्सा का विलम्ब से विरोधी प्रभाव उभरता है जो कई बार असुलझा ही रह जाता है। यह सब स्पर्श प्रक्रिया का ही स्वरूप है।

शरीर की कौन सी नस को कब कहाँ, कितना दबाने से क्या प्रतिक्रिया होगी यह भी एक गूढ एवं अद्‌भूत विषय है। किसी किसी को ऐसी कोई तरकीब ज्ञात हो जाती है तब वह अपने आप को कोई सिद्ध पुरुष बताता है। और अंधश्रद्धालुओं में करामत दिखा कर स्वार्थ सिद्ध करता है।

सन १९८७-८९ में बोम्बे में एक ठग साधु अपने आप को बड़ा सिद्ध पुरुष बतलाता था। वह जिसका हाथ पकड़ ले या स्त्री का अमुक अंग स्पर्श कर देता था तो उसकी धड़कन कम्पन बढ जाती थी या उसे अंदरुनी झटका लगता था। जब साधु हाथ हटा लेता था तो वह व्यक्ति स्वस्थ हो जाता था। काफी दिन तक यह पाखण्ड चलता रहा। फिर कुछ समझदार व्यक्तिओं को शंका गई वे पुलिस को रिपोर्ट कर आये। पुलिसने उसकी तलाशी ली तो उसके तख्ते के नीचे से बिजली का तार जोडा हुआ मिला जो वह साधु अपने शरीर से जोड़ रखता था और जब वह किसी जमीन पर बैठे या खड़े व्यक्ति को स्पर्श करता था तो बिजली प्रवाहित हो जाती थी और झटका आदि लगता था। यदि उसका पर्दाफाश न होता तो उसकी दैवी शक्ति मनुष्य को अंधश्रद्धा में डुबाती रहती।

प्रथम विचार – (स्पर्श) : एक व्यक्ति है जिसके चित्त पर गर्मी का प्रभाव शीघ्र पड़ता है। संयोगवश एक दिन उसे किसी अन्य गाँव जाना था। रास्ते में बंजर जमीन पड़ती थी। उस खुले मैदान में धूप की गर्मी से वह व्यक्ति तप उठा। उस से गर्मी सहन न हो सका वह मैदान में ही बैठ गया और बेहोश हो गया। कुछ देर बाद कुछ अन्य राही उसे उठा कर गाँव पहुँचा दिने। लोगों को जैसा अच्छा लगा उपचार किये। सर पर पानी आदि डाला। गाँव के कर्मकान्डी ओझा भी आ गये। उन्हों ने अपना मन्त्र-तन्त्र का प्रयोग किया। थोड़ी देर बाद उसे होश आ गया। उसका श्रेय मन्त्र तन्त्र को गया। जब कि वह था गर्मी का प्रभाव।

दूसरा विचार (स्पर्श):– गाँव के एक आदमी को मधुप्रमेह (डायबीटीज) की बीमारी थी। एक दिन खेत में कार्य करते समय उसके पैर में उसीके हसिये से मामूली सा घाव लग गया। जो मामूली था पर पक गया। परन्तु उसने विशेष चिन्ता न की गाँव की जड़ीबुटियों से इलाज करता रहा। एक दिन उसे ज्वर हो गया जो

तीन चार दिन तक थोड़ा थोड़ा रहा। फिर एक दिन अचानक उसके हाथ पाँव खिंचने लगे, आँखे टग गई। किसीको कुछ समझ में नही आया। गाँव में डाक्टर तो होते नही। बड़े बूढें अपने अनुभव से जैसा उचित समझते, करते रहे। पन्डे पूजारी को बुला कर पूजापाठ का इन्तजाम किया गया। उधर दशा क्षण-प्रतिक्षण बिगड़ती जा रही थी। अंत में उसे शहर ले जाया गया। डाक्टर ने निदान किया कि इन्हें धनुर हो गया है। अब बहुत देर हो गई है। कोई भरोसा नही।

डाक्टरने इन्जेकशन आदि लगा दी परन्तु उस व्यक्तिने आखिर में दम तोड़ दिया। लोग बाग इसे किसी देवी- प्रकोप मान गये। सब लोग कहने लगे किसी का दोष नही प्रारब्ध में यही था। यह दैवी प्रकोप है।

तीसरा विचार – (स्पर्श) : एक ग्रामीण कन्या थी उसकी उम्र लगभग २५ वर्ष थी। उसे बीस की उम्र से फिट आने लगा। माँ बापने उस पर भूतप्रेत का प्रकोप माना। काफी कुछ कर्मकान्ड जन्त्र-मन्त्र करवाया परन्तु उसका फिट का आना बंद न हुआ। आखिर में तो उसकी ऐसी दशा हो गई कि यदि कोई पुरुष उसके नजदीक आ जाता या स्पर्श करता तो वह बेहोश हो जाती उसके दाँत बंद हो जाते। मुँह से कभी-कभी लार निकलता।

एक नौजवानने हिम्मत से उससे विवाह कर लिया। और उसके बाद उसे कभी फिट नहीं आया।

वास्तव में वह नौजवान हो गई थी। उसकी काम शक्ति उग्र रूप से उसे सताती थी। परन्तु बेचारी अन्दर ही अन्दर झुलसती रहती थी और उसकी प्रतिक्रया स्वरूप उसे फिट आ जाता था। किसी पुरूष का स्पर्श उसकी काम- वासना को उखाड देती था और उसका मन व्यग्र हो उठता था।

–वृत्ति –

विपर्यय वृत्ति :– विपर्यय वृत्ति चित्त में भ्रम उत्पन्न होने को कहते है। भ्रम में व्यक्ति असम्भव को भी स्वीकार लेता है। असत्य को सत्य मान लेता है। अवास्तविक को वास्तविक मान लेता है। भूतप्रेत जादूटोना का भ्रम ही आधार स्तम्भ है।

पहला विचार– (वियर्यय वृत्ति) :– एक अंधश्रद्धालु व्यक्ति है। उसके कच्चे मकान के रूम में अंधेरा रहता था। एक दिन उसने खाट के नीचे एक सांप रेंगते देखा

तो चिल्ला पड़ा। लोग बाग आये प्रकाश जला कर देखा कहीं कुछ न था। कुछ दिन बाद उसने खाट पर सांप को चढ़ते देखा और चिल्लाया। फिर लोग आये प्रकाश जलाया, देखा कहीं कुछ न था।

अब उस व्यक्ति को डर लग गया कि वह साँप बार- बार देखता है। उसने गाँव के पंडित को बुलाया। पंडितजीने ग्रह इत्यादि देखकर देवता की शान्ति के लिये जाप आदि का कार्यक्रम बताया। उस गृहस्थने पूजापाठ करवाया। फिर बहुत दिनों तक शान्ति रही। लेकिन एक दिन अचानक फिर उसने खाट के नीचे सांप रेंगते देखा। उसने सब को फिर इकठ्ठा किया वहाँ देखा तो (सन) जुट के एक टुकडे को चुहा इधर उधर खींच कर ले जा रहा था। वही एक बिल थी। जिसमें चुहा घुस गया था और देखते देखते कईबार बाहर अपना सर निकाल कर अन्दर घुस गया। फिर लोगों को साँप के रहस्य का पता चला। वर्ना वह देवता का प्रकोप था।

दूसरा विचार (विपर्यय वृत्ति) :- गाँव का एक व्यक्ति सायं अंधेरे में घर लौट रहा था। रास्तेमें एक सून सान जगह पर कुछ छोटी-मोटी झाडियाँ थी जिसे देख कर वह समझा कि वे चोर लोग है जो उसे पकड़कर मारने व लूटने के लिये बैठे है। वह अत्यन्त भयभीत हो गया। उसके हृदय पर बहुत बड़ा धक्का लगा। वह चिल्लाता हुआ पीछे भागा, वस्ती में जाकर रात को गिर पडा। उसके नाक से खून बहने लगा। लोग बागने उसे सम्हाले और घर पहुँचा दिया। उसके हृदय पर इतना जोर से धक्का लगा था कि कई दिन तक वह अस्वस्थ रहा। उसकी पत्नीने पंडितजी से पूजापाठ करवाया और अच्छा हो जाने पर काशी जाकर विश्वनाथ मंदिर में सवा रुपैया चढ़ाया। और गंगा स्नान किया। क्योंकि उसने इसे कोई दैवी प्रकोप माना था।

तीसरा विचार (विपर्यय वृत्ति) :- मेरे एक मित्र श्री मगनलाल शर्मा थे। रेल्वे में ब्यइलर इन्स्पेक्टर थे सन-१९८६ में वांकानेर (गुजरात) में सेवा निवृत्त हो गये। वे अजमेर के रहने वाले थे। एक बार सन् १९५६ में चाँदनी रात में अजमेर में वे सायकिल से कहीं जा रहे थे। एक सून सान जगह पर उन्हों ने सड़क पर एक बहुत बडा और मोटा दैत्याकार काले रंग का आदमी हाथ उठाये खड़ा देखा और एक दम डर गये मुँह से चीख निकल गई और सायकल सड़क के बगल में थोडे से खड्डे में जा गीरी। ठीक इसी समय पीछे से एक (ट्रक) खटारा पसार हो गया। शर्माजी को थोड़ा ढाढस हुआ। वे सायकिल सम्हाल कर सड़क के बगल में खडे

हो कर अपने कपडे इत्यादि झाड कर चलने को थे कि उनकी नजर सडक पर पडी और देखा कि चाँदनी की रोशनी में किसी पेड़ की परछाई दैत्याकार पड़ी थी। वे अपने भ्रम को समझ गये और घर आ गये। परन्तु प्रथम दृष्य से जो मन आंतकित एवं भययीत हुआ था उसका इतना प्रभाव पड़ा एवं दिल को धक्का लगा कि शर्माजी दो तीन दिन तक अस्वस्थ रहे धीरे-धीरे उनका मन स्वस्थ हुआ।

यदि इस घटना में वह ट्रक न आ जाती और शर्माजी थोड़ा साहसिक न होते तो वे वहीं गम्भीर हालात में पड़े रह जाते किसी की सहायता से घर पहुँचते और भूतप्रेत की एक सत्य घटना लोगों में फैल जाती।

चौथा विचार (विपर्यय वृत्ति) :– सन् १९५३ में मैं दाहोद (गुजरात) के रेल कारखाने में ट्रेनिंग ले रहा था। रेल्वे कोलोनी (फ्रीलेन्ड गंज) के धोबी घाट के एक क्वाटर में रहता था। मेरे घर से तीसरे नम्बर के घर में जो आदमी रहता था वह एक माह की छुट्टी पर गया हुआ था। एक दिन उसके घर के सामने से पसार होते हुए मैं ने उसके कम्पाउन्ड में एक चिराग जलते देखा। मैं थोडा आगे निकल गया तब ध्यान में आया कि वह पडोशी छुट्टी से आ गया है। मैं उससे व्यवहारिक बातचीत के लिये वापस आया तो मैं आश्चर्य में पड़ गया। वहाँ ताला था और अन्धेरा था। मैं ने तो बत्ती जलते प्रत्यक्ष देखा था अतः मेरा मन असंतुष्ट हो गया। मैं विचार करते करते वही आगे पीछे घूमता रहा। तब तक एक बार फिर उसी जगह बत्ती जलती दिखलाई पड़ी मैं वहीं रुक गया और देखा उसके कम्पाउन्ड में थोडा वर्षा का पानी है और उसमें दूर के किसी सड़क की बत्ती का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है। तब मैं भ्रम को समझ गया।

इस घटना में यदि मैं कुछ दृढ विचारों का न होता और यदि मेरा भ्रम न टूटता तो मैं भूतप्रेत का आँखों देखी घटना का वर्णन करता फिरता। ऐसी बातों पर लोग विश्वास भी तुंरन्त कर लेते हैं।

पाँचवाँ विचार (विपर्यय वृत्ति) :– सन् १९६२ में मैं रेलवे सर्विस में राजकोट (गुजरात) में था। मुझे-रेल्वे क्वाटर मिला था। मेरे घर के सामने बहुत विशाल बंजर मैदान था। रेगिस्तान सा लगता था। अब तो वहाँ बस्ती व व्यवसाय हो रहा है। तब १९६२ में मैं एक दिन ग्रीष्मकाल

में अपने घर के बाहर सायं लगभग ६-३० बजे बैठा था। चाय पीते पीते उस मैदान में लगभग एक या डेढ किलोमीटर दूर मैंने एक गाय को इधर उधर घूमते देख रहा था। मेरी नजर, चाय का कप स्टूल पर रखने के लिये जरा देर के लिये हट गई। इतने में तो वह गाय गायब हो गई। मैं सोचने लगा कि इतने लम्बे चौडे मैदान में जो कम से कम पाँच किलोमीटर चौरस तो रहा ही होगा। वह गाय अचानक कहाँ चली गई। मैंने गौर से सारे मैदान पर नजर डाली, कहीं कुछ नहीं। नजर को दूसरी ओर से घूमाने पर अचानक वहीं जहाँ से गाय गायब हुई थी, अब कुत्ता प्रकट हो गया और इधर उधर घूमने लगा। मैं बड़े बिस्मय में पड़ा कि गाय गायब हो गई और अचानक कुत्ता आ गया यह सब कैसे हो रहा है जब कि समूचा मैदान नजर के सामने है।

मैं ने यह बात दूसरे दिन अन्य लोगों से कही। लोग- तरह - तरह की बातें करते। बहुतों ने कहा कि ऐस निर्जन मैदानों में कोई कोई मृत जीव रहते हैं जो इसी तरह विभिन्न रूप धारण करके विचरते हैं। इस पर ध्यान नहीं देना चाहिये व्याधि आ सकती है।

लेकिन मेरा मन न माना। मैं अपने एक मित्र को मधुभाई देसाई को लेकर दूसरे दिन सायं उसी समय (छह बजे) मैदान में चल पड़ा। लगभग डेढ किलोमीटर चलने पर देखा कि वहाँ एक खड्डा था कुछ कचडे पडे थे और उस समय भी एक कुत्ता उस खड्डे में कुछ ढूंढ रहा था। सारा रहस्य खुल गया वह गाय यी खड्डे में चली गई थी और तब कुत्ता बाहर आ गया था।

इस घटना में भी यदि मैं अंध विश्वासी होता तो एक अद्भूत घटना मानकर भूतप्रेत का आँखों देखा वर्णन करता।

छठा विचार (विपर्यय वृत्ति) :- मेरे एक मित्र श्री मुंशीराम जी शर्मा है बडौदा के प्रिन्सीपाल थे अब सेवा निवृत्त हो गये हैं। वे हरियाना के रहने वाले हैं। बड़े उत्साही, विद्वान तथा हिम्मती है।

उनके गाँव (हरयाणा) में एक फकीर झाडफूक कर जिन्ह भगाया करता था और रोग आदि भी दूर करता था। शर्मा जी ने उस फकीर को एक दिन सन् १९५४ में पकडा और पूछा कि वह सब पाखण्ड क्यों करता

है। उसने कहा यह सब पाखण्ड नहीं, सत्य है। मैं बड़े बड़े जिन्न व शैतान को काबू में करता हूँ।

शर्मा जी ने कहा कि मुझे दिखाओ और जो कुछ भी कर सकते हो मेरे पर करो। उसने शर्माजी को एक पास के पहाडी के पीछे एक दिन रात को चलने को कहा। शर्मा जी तैयार हो गये। दिन, वार निश्चित हो गया। शर्माजीने इधर अपने एक दूसरे मित्र को भी तैयार किया जो मिलीटरी में सर्विस करता था और उसके पास अपनी एक पिस्तोल भी थी। शर्माजी ने उन्हें पीछे–पीछे थोड़ी दूरी रख गुपचुप आने को कहा और पुकारने पर पहुँच जाये ऐसा कहा। बात तय हो गई। निश्चित दिन ठीक समय पर शर्माजी फकीर के साथ रात को लगभग १०–३० बजे चल पडे। शर्माजी का मित्र पिस्तोल हाथ में तैयार रखे गुपचुप पीछा करते चला। फकीर रास्ते भर शर्माजी को डराते व समझाते चला कि इसमें जान का भी खतरा है। अब भी लौट जाओ– परन्तु शर्मा जीने एक न सुनी। चलते ही गये।

पहाडी के पीछे एक जगह फकीर रुका। थोडा बहुत और बड़बडाया इतने में थोडी दूर से कुछ काला–काला भीमकाय आकार का, आते दिखलाई दिया। फकीर ने कहा देखो अब सम्हलना। शर्मा जी थोडा भयभीत हो गये ओर आवाज लगाई "दौडो" बस उनका मित्र लपक कर आ गया और काली आक्रति पर पिस्तोल दाग दी। आक्रति गिर पड़ी कुछ खडबडाहट की आवाज आई और किसी के भागने की आहट आई टोर्च से देखा एक आदमी भाग रहा था। शर्मा जीने दौडकर उसे दबोच लिया।

उस दिन शर्माजी व उनके मित्रने फकीर को मार मार के अधमरा कर के छोड़ दिया। भागते व्यक्ति को भी मारा। उसने हाथ जोड़ कर गिड़गिडा कर कबूल किया कि उसे दस रुपैया फकीर ने दिया और एक लकड़ी में काला कपड़ा ऊँचा कर के उसके इशारे पर आने को कहा था। उस फकीर ने हाथ पाँव जोड़कर माफी माँगी और भविष्य में यह सब पाखण्ड छोड़ देने का वचन दिया।

इस तरह से अन्धेरे आदि में दृष्टि के द्वारा भ्रम किसी न किसी स्वरूप में उत्पन्न हो जाता है और अंध विश्वास तथा कमजोर मनोबल के अज्ञानी जनों में इसी भ्रम के कारण चित्त में विकार पैदा होते हैं फिर उन्माद

उत्पन्न हो जाता है, जो छटपटाना आदि दशा तक पहुँच जाती है।

वास्तव में कुछ नहीं होता। सब भ्रम ही भ्रम होता है। जिस के कारण भय तथा चित्त की विकृति और फिर उन्माद आदि आ जाता है और व्यक्ति अपुआते लग जाता है।

उत्साह, भय, करुणा, उमंग व उन्माद की उग्रता में साधरण मनुष्य भी शरीर को स्प्रींग के जैसे झटकनें पटकने लगता है। मेरे गाँव में एक झगड़ालू स्त्री थी वह गुस्से में इतना प्रभावित हो जाती थी कि उसे दो तीन व्यक्ति पकड़ नहीं पाते थे। वह एक ही बात को एक ही सड़क्के में बीस पच्चीस बार हाथ पैर झटकाते हुये बोल जाती थी। यह भी एक प्रकार का मानसिक उन्माद है।

मेरी छोटी बहन के स्वसुर बडे भावुक थे। कहीं भी ईश्वर की प्रार्थना होती हो तो सुनते सुनते जोर जोर से रोने लगते थे और दस पंद्रह मिनट में शान्त होते थे। यह भी एक प्रकार का मानसिक उन्माद है।

मेरे एक परिचित व्यक्ति थे के.सी. कोटक (राजकोट) की पत्नी धार्मिक कार्यक्रम में प्रार्थना व ढोल इत्यादि सुन कर उन्मादित हो उठती थी। और लोटने पोटने लगती थी। यह सब चित्त में पड़ते विभिन्न प्रभावों से उत्पन्न उन्माद है। जिसे लोग अनजाने में देवी देवता या दानव का प्रकोप मान बैठते हैं।

* ◇ *

उपसंहार

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाजमें अपनी विद्या, बुद्धि तथा योग्यता के अनुसार अपना जीवन निर्वाह करता है।

जब वह अपनी दिनचर्या में घटने या बढ़ने लगता है तब वह समाजमें एक विशेष स्थान प्राप्त करलेता तो उसकी यह विशेषता जब उत्कर्ष की ओर होती है तब वह एक प्रतिष्ठित व्यक्ति बन जाता है परंतु जब वह निकृष्टता की और चलता है तब वह बदनाम व्यक्ति हो जाता है। इन दो स्तरो के अतिरिक्त जब व्यक्ति मानसिक व्याधी के कारण व्यग्र हो उठता है तब वह असाधारण (Abnormal) व्यक्ति हो उठता है। इस असाधारण अवस्था कि गुत्थी बहुत ही उलझी हुई होती है।

मनुष्यका प्रत्यक्ष व्यवहार सदैव उसके मनोदशा के अनुकूल ही होता है। ईस उलझी हुई गुथ्थी के न समझने के कारण ही व्यक्ति भूत-प्रेत जादु-टोना के भ्रमजाल में फसता है।

मनको प्रभावित करने वाले व्याधि, सत्यान, संशय, प्रमाद, अवरति, आलस्य, स्वांस प्रस्वाश, अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश स्मृति वृत्ति तथा निन्द्रावृत्ति आदी अंतर श्रोतीय कारणों का तथा शब्द, रुप, रस, गंध, स्पर्श तथा विपर्यय वृत्ति आदी आह्य कारणों पर यथा संभव प्रकाश डाला गया है।

मानव मन उक्त अंदरोनी तथा बाहरी किन्ही कारणो से उन्मादित, व्यथित अथवा व्यग्र हो कर अस्वाभाविक वर्ताव करने लगता है। इसी को मनुष्य अज्ञानता एवं अंधश्रद्धा के कारण देव अथवा दानव का प्रभाव मान लेता है।

बरोडा शहर (गुजरात) में मोटी वहोरवाड में पटनी शुन्नी वहोरा कोम के श्री गुलामभाई रहते है। वे व्यापारी है। उनकी तथा उनके बहनकी सब मिलाके बारह (१२) लड़कियाँ है जीनकी उमर लगभग ११ वर्ष से २२ वर्ष के बीचकी है इन बारह लड़कियों में से कीसी भी एक लडकी को जब उन्माद आता है तो सभी बारह की बारह लड़कियाँ एक एक करके उन्मादित हो उठती है। और सभी हाथ पाँव झटकने पटकने लगती है। इस केश के निरीक्षण एवं स्वाध्याय के लीए अहमदाबादसे संदेश (गुजराती दैनिक प्रेस से एक दल (टीम) गया। जिसमें डोक्टर स्वामी, डॉ. अजिद डॉ. [illegible] रावल, डॉ. महेन्द्र तथा डॉ. श्रीमती तिलोत्तमा जैसे अनुभव[illegible] डॉ थे।

केसका गहराइ से तपास करने के बाद उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला की उन लड़कियाँ के कोमलमन पर किसी एक खुँखार व्यक्ति का आतंक छा जाता है। उस व्यक्ति का नाम किन्ही कारणों बश डोक्टरों के निरीक्षण दलने गुप्त रखा। लडकियों के मन में उस खुँखार व्यक्ति के डरका जब उग्र रुप ले लेता है तब उन लड़कियों पर सामुहिक मांस होस्टीरीया पड जाती है और फिर वे बेहोश हो जाती है। और उस अवस्था में अस्वाभाविक बात व्यवहार करती है।

(संदेश अहमदाबाद. ६–९–९१)

देव तथा दानव शक्ति के पीछे विश्वास अंधश्रद्धा का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। अशिक्षित लोग अज्ञानता के कारण सत्यको ठूकरा देते है और भूत प्रेत जैसे असिद्ध बातों पर अतूट विश्वास करते हैं।

आजकाल साबरकांठा पंचमहाल जिल्ला (गुजरात) के बचकरीयां गांव में (बाबलीया व खंडरवाडा गांव से पंद्रह कीलोमीटर दूर ढीढुवास गांव के पास) जहाँ अधिकतर आदिवासी भील आदी रहते है। वहाँ एक नायक जाति के पुरोहित जो ढ़ोलकवाला या नगारावाला महाराजसे प्रख्यात है। उनके यहाँ आजकल हररोज १०–१५ हजार लोग आते हैं। रविवार, मंगलवार तथा गुरुवारको अधिकलोग आते है। और अपने अपने भूतप्रेत चुडेल आदी दानवीर शक्ति से छुटकारा पाने के लीए उस ढ लिक महाराज के शरण होते है। कीसी भी प्रकारकी बीमारी अथवा कष्ट के लीए वहाँ पाँच दिन बीताना पड़ता है। वहाँ सवा पाँच रुपिया तथा एक नारीयल बिना मांगे ही दे देना पडता है।

रोगी को बिना वस्त्र एक लकड़ी में बांधकर कान पकडकर महाराज के सामने कडकडती ठंडीमें खडा कीया जाता है। महाराज जोर से ढोलक नगारा, घंट, थाली इत्यादि बजवाते है और गुलाब, अमीर, व मीरचा आदी का पाउडर उसके उपर छीडकवाते है। रोगी तडफडाकर गीर पड़ता है। थोडी देर के बाद वह अधमरा सा हो उठता है। रोगी का थोडा सा बाल काटकर रखलीया जाता है। और रोगी को वापस कर दीया जाता हैं।

इस तरह लोगों के दुःख दर्द मीटानेका पाखंड चल रहा है। जिसका भी कोई अर्थ नहीं। केवल अंधश्रद्धा तथा अविद्या है। (गुजरात समाचार, अहमदाबाद. २३–२–९३)

सिलाई–बुनाई और तांत्रीक मेझरमेन्ट की हमारे यहां से प्रकाशित पुस्तकों की सुचि

		Price Rs.
(1)	टी. सी. डबल्यु सी.जी. (सिलाई का पाठ्यपुस्तक)	30-00
(2)	Tailoring & Cutting (English)	10-00
(3)	Technical booklet (English)	5-00
(4)	Tailoring & Cutting (In Marathi)	10-00
(5)	सीवणाच्य परीक्षते सफळता (In Marathi)	10-00
(6)	Draughtmen Cinvil (English)	10-00
(7)	The Original Baibal (English)	10-00
(8)	Embrodery and fancy work (Guj.)	20-00
(9)	Master Tailor (Gujarati)	25-00
(10)	सीवण मार्गदर्शक (Gujarati)	25-00
(11)	Success in Tailoring exam. (Gujarati)	10-00
(12)	Sucess in embroidery exam. (Gujarati)	10-00
(13)	યજુર્વેદ, સામવેદ, અથર્વ વેદ (ગુજરાતી)	15-00
(14)	ઋગવેદ (ગુજરાતી)	25-00
(15)	ઈચ્છાનુસાર સંતાન પ્રાપ્તિ (ગુજરાતી)	15-00

आपकी पसंद की पुस्तके मंगवाने के लिए पूरी कीमत का मनी ऑडर करे और मनी ऑडर फार्म के पीछे आपके ओर्डर की विगत और पूरा पता लिखे। 10 कोपी से ज्यादा ऑर्डर भेजने पर आपको 30 प्रतिशत छुट (Discount) दिया जायेगा।

• पुस्तक मगवाने का ठिकाना •

BHOJAK

प्रकाशवीर आर. भोजक
15/A, करुणा सोसायटी, नवावाडज,
अहमदाबाद – ३८० 013. (गुजरात)